चन्दामामा
अप्रैल १९७५
1 Re

Photo by: BHALCHANDRA KADNE

HAVE A BATH

चन्दामामा
संस्थापक : नागिरेड्डी
संचालक : 'चक्रपाणी'
इस महीने की बेताल कथा 'कर्तव्य' है। मानव के द्वारा जिन कर्तव्यों का पालन करना होता है, वे उस व्यक्ति के द्वारा समाज में संभालनेवाले कार्य और पद के अनुसार भिन्न होते हैं। साधारण गृहस्थ के कर्तव्य उसकी पत्नी, बच्चे, रिश्तेदार तथा मित्रों तक सीमित होते हैं। बड़े अधिकारी को अपने पद के अनुरूप कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। मगर राजा के द्वारा किये जानेवाले कर्तव्य देश की समस्त प्रजा से संबंधित होते हैं।
वर्ष : २७ अप्रैल १९७५ अंक : १०
A CHANDAMAMA PUBLICATION

मित्र-भेद

[२१]

सभी पक्षियों ने गरुड़ के पास जाकर विलाप करते हुए बताया कि किस प्रकार कठफोड़वे के अण्डों को समुद्र ने अन्यायपूर्वक हड़प लिया है।

सारी बातें सुनकर गरुड़ ने पूछा–"कठफोड़वे को अपने अण्डों को छोड़ कहीं जाने की जरूरत ही क्या थी?"

"महानुभाव! हमें अपने पेट भरने के लिए अनेक स्थलों में जाना पड़ता है। कठफोड़वे अपने खाने की खोज में जब कहीं चले गये थे, तब समुद्र ने यह अत्याचार किया है। सिंह तथा भेड़े की कहानी से हम को यह साफ़ मालूम हो जाता है कि दुनिया में सभी कष्टों तथा धोखा-घड़ी का मूल कारण खाना है।" मादा बतख ने कहा।

"वह कैसी कहानी है?" गरुड़ ने पूछा। बूढ़ी बतख ने कहानी यों सुनाई :

सिंह और भेड़ा की कहानी

एक जंगल में एक भेड़ अपनी रेवड़ से दूर हो अकेली अपने दिन बिताती थी। उसके रोम घने थे, सींग तेज़ थे; उसकी आवाज़ कड़ी थी, इसलिए उसको जंगल में स्वेच्छापूर्वक घूमते देख अन्य जानवर डर के मारे कांप उठते थे।

एक दिन अचानक एक सिंह ने उसको देखा। उसके भारी शरीर, रोम और सींगों को देख घबराकर मन में सोचा–"उफ़! यदि यह जानवर निर्भय जंगल में घूम रहा है तो इसका मतलब है कि यह निश्चय ही मुझसे ज्यादा बलवान होगा।"

लेकिन एक दिन वह भेड़ा अपनी भूख मिटाने के लिए घास चर रहा था, इसे सिंह ने देख लिया।

"उफ़! यह तो घास चरनेवाला ज़ानवर है! यह मेरे जैसे बलवान कभी नहीं हो सकता! यह तो मेरे आहार बनने योग्य है!" यों सोचकर सिंह ने भेड़े को मारकर खा डाला।

बूढ़ी बतख यह कहानी पूरी करनेवाली थी, तभी गरुड़ को श्री महाविष्णु के यहाँ से बुलावा आया। विष्णु को गरुड़ पर सवार हो शीघ्र कहीं जाना था।

गरुड़ ने विष्णु के पास जाकर निवेदन किया–"भगवन! मैं इस वक़्त कैसे चल सकता हूँ? मेरी जाति के इस कठफोड़वे के अण्डों का समुद्र ने हरण कर लिया है। उन्हें कठफोड़वे को फिर से दिलाना मेरा कर्तव्य है न! समुद्र यदि इस प्रकार के अत्याचार और अन्याय करता रहे तो मेरा बड़प्पन क्या होगा कि मैं भगवान का वाहन हूँ?"

तत्काल ही श्रीविष्णु ने धनुष पर बाण चढ़ाकर समुद्र से कहा–"तुम शीघ्र कठफोड़वे के अण्डों को वापस कर दो, वरना यह बाण तुम को सुखाकर रेतीला मैदान बना देगा!" ये बातें सुन समुद्र भय के मारे कांप उठा और उसी समय उसने अण्डे लाकर कठफोड़वे के जोड़े को सौंप दिया।

दमनक ने संजीवक को यह कहानी सुनाकर कहा–"तुम्हारे ऐसे मित्र ही कौन हैं? इसलिए तुम सिंह के साथ जूझने का विचार त्याग दो।"

"हे मित्र! यह बात मुझे कैसे मालूम होगी कि पिंगलक वास्तव में मेरा वध करना चाहता है या नहीं?" यों संजीवक ने दमनक से पूछा।

"यह बात बड़ी आसानी से जानी जा सकती है! सिंह अपने सिंहासन चट्टान पर बैठकर तुम्हारे उसके निकट जाने पर प्रसन्नचित्त हो शांति से रहा तो समझ

लो कि तुम्हें कोई खतरा नहीं है, मगर पूंछ को मरोड़ते, पंजों को कसकर तुम्हें दूर पर देखते ही तुम पर तीक्ष्ण दृष्टि डाले तो निश्चय ही मान लो कि वह तुम को मारनेवाला है।" दमनक ने समझाया।

इसके बाद दमनक जाकर करटक से मिला। "तुम्हारा कार्य कहाँ तक संपन्न हुआ?" करटक ने पूछा।

"दोनों के बीच वैमनस्य पैदा करके लौटा हूँ।" दमनक ने उत्तर दिया।

"सच है?" करटक ने संदेह भरे स्वर में पूछा।

"तुम्हीं शीघ्र देखोगे कि मेरे प्रयत्न कैसे सफल होनेवाले हैं! बैल तथा सिंह के बीच जो मैत्रीभाव था, उसको मैंने तोड़ डाला है।" दमनक ने कहा।

"इसमें आश्चर्य करने की बात क्या है? निरंतर पानी के बहते रहने से पत्थर भी घिस जाते हैं। तुम भी बराबर षड़यंत्र रचते जाओगे तो उनकी मैत्री भी बिगड़ सकती है। मगर मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसा बड़ा षड्यंत्र रचकर तुम कौन-सा फल प्राप्त करनेवाले हो?" करटक ने पूछा।

"यह भी कैसा बेतुका सवाल है? मैं प्रधान मंत्री बनकर बहुत बड़ा लाभ प्राप्त करने जा रहा हूँ। लोग कहते हैं कि अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करके भी उस विद्या के द्वारा यदि कोई धन और अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता, उसकी शिक्षा ही व्यर्थ है।" दमनक ने समझाया।

"मगर स्वार्थ भी तो हीन स्वभाव है। इस तुच्छ शरीर के वास्ते जो मन में आया सो नहीं करना चाहिए। अलावा इसके तुम्हारा षड्यंत्र प्रकट हो जाएगा तो धूर्त की कथा जैसे तुम्हारे प्राणों के लिए भी खतरा पैदा होने की संभावना है!" करटक ने समझाया।

"वह कैसी कहानी है?" दमनक ने पूछा।

करटक ने धूर्त की कहानी यों सुनाई:

विचित्र जुड़वाँ

[९]

[संध्याकुमार तथा निशीथ की बातों में आकर राक्षस दाढ़ीवाले को देखने गया। इस बीच में दोनों जुड़वें भाई राक्षस के महल में स्थित तड़ाग के पास गये और शिला की प्रतिमा तथा बंदर के रूप में बदल गये। एक कन्या ने जुड़वें भाइयों को तड़ाग में ढकेल दिया। इस पर वे सब हंसों के रूप में बदल गये। इसके बाद–]

राक्षस एक बार और चिल्ला उठा– "अरे, तुम लोग कहाँ हो?" वह इस वक़्त सख़्त नाराज़ था। उसने दाढ़ीवाले से बात करने के बाद जान लिया कि संध्याकुमार तथा निशीथ ने उसको दगा दिया है।

राक्षस को अपने घर आते देख दाढ़ीवाला आश्चर्य में आ गया। इसके बाद राक्षस के द्वारा सारी बातें जानकर दाढ़ीवाला सर पीटते हुए बोला–" उफ़! क्या तुम उन बदमाशों को क़िले में ही छोड़ आये हो! उन दगाबाज़ों ने मेरे यहाँ के भस्म, अंजन आदि ही हड़प नहीं लिया, बल्कि तुम को भी चकमा दिया है। देखने में ये लोग चालाक मालूम होते हैं। अब भी कुछ बिगड़ा नहीं, तुम जल्दी क़िले में लौटकर उन्हें पकड़ लो, भागने न दो, वरना हमारे मारे
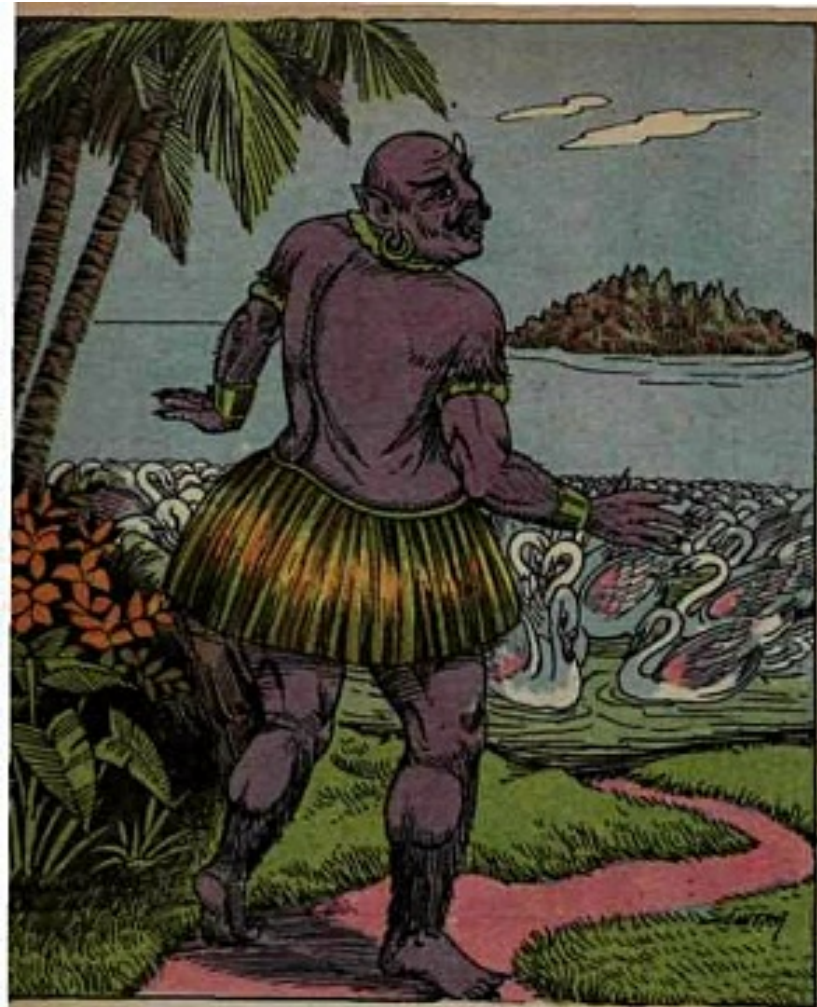
रहस्य खुले जाएंगे। खासकर हमारे महल का रहस्य यदि उन पर प्रकट हो गया तो समझ लो कि मेरी और तुम्हारी जान की खैर् नहीं! इसलिए जाओ, तुम जल्दी चले जाओ। सुनो, वे किसी भी तरह से भागने न पाये।" यों दाढ़ीवाला राक्षस को जल्दी मचाने लगा।

दाढ़ीवाले की सलाह पाकर राक्षस क़िले की तरफ़ दौड़ पड़र, अपने महल में पहुँचकर देखता क्या है, उसने द्वार पर संध्याकुमार तथा निशीथ को जो पहरे पर रखा था, वे दोनों नदारद! इस पर वह "कहाँ हो बे तुम लोग?" चिल्लाते तड़ाग की ओर भाग आया, मगर तड़ाग के पास भी उनका कहीं पता न लगा। थोड़ी देर के लिए वह चिंता में डूब गया।

राक्षस अब क्रोध में आया, बड़ी सावधानी से उनकी खोज करने लगा। शाम तक वह उन्हें ढूंढ़ता रहा, पर कोई फ़ायदा न रहा, आखिर निराश हो थके-मांदे वह अपने महल को लौट आया।

राक्षस जिस वक्त संध्याकुमार तथा निशीथ की खोज कर रहा था, तब उदयन अपने भाइयों के साथ हंसों के रूप में तड़ाग में ही तैर रहा था। राक्षस के चले जाने पर उदयन तड़ाग में से बाहर आया और अपने पूर्व रूप को प्राप्त हुआ। उसके साथ तड़ाग की कन्या भी बाहर आ पहुंची। तब उस कन्या ने उदयन से यों कहा:

"बेचारे आप लोग कोई अभागे मालूम होते हैं! लगता है कि रास्ता भटककर इस महल में पहुँच गये हैं। इस महल के चारों तरफ़ चार कोसों की दूरी तक कोई भी प्राणी पहुँच जाय, उसका पता लगाकर बन्दी बनानेवाला एक दाढ़ीवाला है। उसको चकमा देकर निकलना ब्रह्मा के लिए भी संभव नहीं है। मुझे आश्चर्य है कि आप लोग उसको धोखा देकर कैसे यहाँ तक पहुँचे? अब भी सही, आप लोगों को इस स्थान को छोड़कर चले जाना

उचित होगा। ऐसा न करेंगे तो आप के प्राणों के लिए खतरा पैदा होगा! यह महल एक दुष्ट राक्षस का है। इस वक्त तो वह यहाँ पर नहीं है। मगर कोई यह नहीं जानता कि वह कब यहाँ आता है और कब यहाँ से जाता है? इस बीच में आप को यह उपाय बताऊँगी कि आप के भाई अपने पूर्व रूप को कैसे प्राप्त कर सकते हैं? वह उपाय करके आप लोग जल्द ही इस विपदा से बचकर यहाँ से चले जाइए।"

जलकन्या के मुँह से यह वृत्तांत सुनकर उदयन ने कहा—"हम लोग भूल से या रास्ता भटककर यहाँ पर नहीं आये हैं। इस महल का रहस्य जानने के कुतूहल से ही प्राणों का मोह छोड़कर यहाँ पर आये हैं। इसलिए तुम हमारी चिंता मत करो। लेकिन इस राक्षस के बारे में तुम जो कुछ जानती हो, सविस्तार बतला दो। लेकिन अब तक तुमने अपना परिचय नहीं दिया। तुम्हें अगर कोई आपत्ति न हो तो अपना परिचय दो, हम तुम्हारा परिचय पाकर बहुत प्रसन्न होंगे।"

इस पर जलकन्या ने यों बताया—"मुझे अपना परिचय देने में कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन मेरा परिचय पाकर आप मेरा उपकार कर नहीं सकेंगे। फिर भी आप ने पूछा, इसलिए बता देती हूँ।" इन शब्दों के साथ वह तड़ाग में कूद पड़ी, थोड़ी देर बाद दो और हंसों को साथ ले बाहर आयी। जलकन्या के साथ उन दोनों हंसों के बाहर आते ही वे भी दो सुंदर कन्याओं के रूप में बदल गये।

उन तीनों की रूप-रेखाओं को समान देख उदयन ने विस्मय में आकर पूछा—"क्या तुम तीनों जुड़वीं कन्याएँ तो नहीं?"

"जी हाँ!" तीनों कन्याओं ने एक स्वर में उत्तर दिया। इस पर उत्साह में आकर उदयन ने कहा—"हम लोग तो इतने दिनों से तुम लोगों की ही खोज

करते रहें। तुम तीनों महाराजा दानशील की पुत्रियाँ हो न?"

यह प्रश्न सुनकर वे कन्याएँ अमित आश्चर्य में आ गईं। सबने विस्मय पूर्वक पूछा—"हाँ, बात तो सच है! मगर यह बताइए कि हमारा समाचार आप को कैसे मालूम हो गया?"

"हम तो तुम्हारे सारे वृत्तांत जानते हैं। तुम लोगों को ढूंढ़ लाने के लिए ही हम तुम्हारे पिता के आशीर्वाद लेकर चले आये हैं! तुम्हारे नाम..." उदयन ने पूछा।

"मेरा नाम तो सुहासिनी है...आप ने अभी कहा कि हमारे सारे वृत्तांत जानते हैं? ऐसी हालत में मैं समझती हूँ कि बाक़ी दोनों के नाम आप स्वयं बता सकते हैं!" सुहासिनी ने कहा।

"क्यों नहीं? पर हमने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि इतने शीघ्र तुम लोगों से इतनी सरलता के साथ मिल सकते हैं! यह शुभ समाचार मेरे भाइयों को भी मालूम हो जाता तो क्या ही अच्छा होता!" अपने भाइयों को मानव रूप प्राप्त न होने पर उदयन ने गहरी चिंता प्रकट की।

इस पर सुहासिनी ने समझाया—"आप चिंता न कीजिए!" इन शब्दों के साथ वह तड़ाग में उतर पड़ी, थोड़ी देर में बंदर के रूप में स्थित निशीथ तथा शिला प्रतिमा के रूप में स्थित संध्याकुमार को साथ लेकर बाहर आई। तब उदयन को साथ ले उस बगीचे में स्थित आम के पेड़ के पास पहुँची।

आम के पेड़ के निकट कुछ कुकुरमुत्ते उगे हुए थे। जलकन्या ने उदयन को समझाया कि उनमें से थोड़े कुकुरमुत्ते तोड़ ले। उदयन ने ऐसा ही किया। इसके बाद उदयन को अपने साथ थोड़ी दूर और ले गई। वहाँ पर राक्षस की एक मूर्ति थी। उस मूर्ति के मुंह में से पानी बह रहा था। जलकन्या ने एक

पत्ते से दोना बनाकर उदयन के हाथ में दिया। उदयन ने दोने में पानी भर लिया। इन दोनों चीज़ों के साथ वे तड़ाग के पास लौट आये।

सुहासिनी ने उदयन को समझाया कि वह उन कूकुरमुत्तों को बंदर को खिला दे, उदयन ने ऐसा ही किया। इस पर निशीथ अपने पूर्व रूप को प्राप्त कर सका। तब दोने से लाया गया जल शिला प्रतिमा पर डाला गया जिससे संध्याकुमार ने भी अपने पूर्व रूप को प्राप्त किया।

इसके बाद उदयन ने अपने भाइयों को उन कन्याओं को दिखाते हुए कहा–"देखते हो न, यह कैसे आश्चर्य की बात है! हम जिन राजकुमारियों की खोज कर रहे थे, वे ही ये राजकुमारियाँ हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि हम जिस काम से आये, वह काम संपन्न हो गया है। अब हमें यह उपाय करना है कि इनको लेकर इस महल से बाहर कैसे चले जाय!"

इसके उत्तर के रूप में सुहासिनी ने कहा–"यह काम वैसे सरल नहीं है। हमारी रक्षा करने की बात दूर रही, पहले आप लोग अपने प्राण बचाकर यहाँ से बाहर जा सकें तो..." वह कुछ और कहने जा रही थी, तभी एक भयंकर वात्याचक्र उठा।

सुहासिनी घबराये हुए स्वर में बोली–"लो, वह राक्षस चला आ रहा है! यह

वात्याचक्र उसी का संकेत है! अब हम फिर से तड़ाग में चली जायेंगी। लेकिन आप लोगों की बात क्या है? यदि हम आप लोगों को पहले जैसे हंसों में बदल दें तब भी वह आप लोगों को पहचान कर पकड़ लेगा। मेरी समझ में न आता कि आप कैसे बच सकेंगे? सावधान रहिये।" इन शब्दों के साथ अपनी छोटी बहनों को लेकर सुहासिनी तड़ाग में चली गई।

उदयन ने तत्काल सफ़ेद भस्म निकाल कर अपने तथा अपने भाइयों पर छिड़का दिया। दूसरे ही क्षण सब लोग गायब हो गये। तभी एक विशाल गीध आकर तड़ाग के तट पर उतरा। मगर आश्चर्य की बात यह थी कि तट पर उतरते ही वह अपने गीध रूप को खोकर एक भयंकर राक्षस बना।

राक्षस को देखते ही तड़ाग में तैरनेवाले सारे हंस अपने पंख फड़फड़ाते क़तारों में आकर तट के समीप पानी में खड़े हो गये। राक्षस ने पलभर उनकी ओर ध्यान से देखा, संतोष की सांस ली, फिर गीध के रूप में फुर्र से आसमान में उड़कर चला गया।

तब तक अंधेरा फैल चुका था। उदयन ने भस्म की मदद से अपने तथा अपने भाइयों को पूर्व रूप दिलाया। तीन दिनों से वे भूखे थे। इसलिए अपने तौलिये की मदद से वांछित भोजन और फलों की सृष्टि करके सबने भर पेट खा लिया। थोड़ी देर यह सोचकर जलकन्याओं का इंतज़ार करते रहें कि शायद वे फिर से बाहर आ जायँ। मगर बड़ी देर तक उनके लौटते न देख तब निश्चय कर लिया कि उन्हें वह रात वहीं पर बितानी पड़ेगी। वास्तविक रूप में वहां पर रहना ख़तरनाक समझकर भस्म की सहायता से अदृश्य रूप में वहीं रह गये।

सवेरा हुआ। तड़ाग में से जलकन्याओं का बाहर आना और जुड़वें भाइयों का

वास्तविक रूप को प्राप्त करना, दोनों कार्य एक साथ संपन्न हुए।

उदयन ने सुहासिनी से पूछा–"राजकुमारी, यह बताओ कि वह राक्षस कहाँ चला गया और कब लौटेगा?"

"जाएगा ही कहाँ? शिकार खेलने गया होगा! शिकार का मतलब जानवरों का नहीं, जुड़वों का शिकार है।" सुहासिनी ने उत्तर दिया।

"जुड़वों का शिकार कैसा?" उदयन ने पुनः पूछा।

"यह एक अनोखा रहस्य है। यह राक्षस एक देवी की उपासना करता है। उस देवी की महिमा की वजह से राक्षस यह जादू का महल बना सका। इसके वास्ते राक्षस को पचास जुड़वों की बलि देवी को देनी होगी। यह बलि पूरी होगी तो देवी उसको समस्त प्रकार की महिमाएँ ही न देंगी, बल्कि उसे अमर बने रहने का वरदान भी देंगी। अब तक राक्षस के हाथ सैंतालीस जुड़वें मात्र लगे हैं। अब वह इस ख्याल से गीध के रूप में सारे संसार का चक्कर काट रहा है कि कब उसे बाक़ी जुड़वें प्राप्त होंगे और कब उन्हें देवी की बलि देकर वरदान प्राप्त करे। इसी उधेड़बुन में उसका

मन विकल है।" सुहासिनी ने राक्षस के सारे मर्म का परिचय दिया।

जुड़वें भाइयों ने सुहासिनी की बातें बड़ी उत्सुकतापूर्वक सुनीं। उदयन ने कहा–"ओह! हम भी कैसे भाग्यवान हैं? हम तीनों अगर उसके हाथ लग गये होते तो आज उसका शिकार खेलना समाप्त हुआ होता। बलि भी संपूर्ण हो जाती?"

"सो कैसे? क्या आप लोग भी जुड़वें हैं?" जुड़वीं कन्याओं ने आश्चर्य में आकर पूछा।

"हाँ! हम जुड़वें हैं। हमारी ज़रूरत राक्षस को है, तुम लोगों की रक्षा

करनेवाले ही हम ही बने हैं। इस बात की मैं चिंता करता हूँ।" उदयन ने कहा।

"तब तो आप लोगों को और सावधानी बरतनी है!" सुहासुनी ने उन्हें सचेत किया।

"हाँ! हमें तो असली रहस्य का अभी पता लगा। इसलिए हम आगे सतर्क रहेंगे ही। फिर भी यहाँ से बाहर निकलने का मार्ग तो सोचना है? मुझे ऐसा लगता है कि यह सारा प्रदेश मायाजाल से भरा हुआ है। इसलिए तुम बताओ कि यहाँ से बाहर जाने में हमें किन विपत्तियों का सामना करना होगा, तो हम उनसे बचने का उपाय सोचेंगे।" उदयन ने कहा।

"सबसे मुख्य बात तो यह है कि आप लोग राक्षस की आँख बचाकर उसके भूगर्भ गृह में पहुँच जायें तो शायद काम बने।" सुहासिनी ने कहा।

"उफ़! यह कौन बड़ी बात है? तुम लोग देखोगी कि हमारे पास जो भस्म हैं, उनकी मदद से हम कैसे अदृश्य रूप को प्राप्त होते हैं?" उदयन ने समझाया।

"यह कौन अनोखा उपाय है? अच्छा हुआ कि आप ने पहले ही रहस्य खोल दिया, इसलिए मैं समझ सकी। आप के भस्म और अंजन राक्षस के भूगर्भ गृह में काम न देंगे। उनकी महिमा सिर्फ़ यहीं तक है। इसलिए उनकी आशा छोड़ दीजिए।" सुहासिनी ने बताया।

ये बातें सुनने पर जुड़वें भाइयों का सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया। उनको चिंतित देख सुहासिनी ने समझाया—"आप लोग हिम्मत क्यों हार बैठे? अपने बुद्धिबल का उपयोग करके कोई उपाय सोचना होगा।"

"सोचने के लिए समय भी तो हो?" उदयन ने कहा।

"हाँ, आप ठीक कहते हैं! इतमीनान से विचार करना होगा।" सुहासिनी ने कहा। (और है)

कर्त्तव्य

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया। पेड़ से शव उतार कर कंधे पर डाल सदा की भांति श्मशान की ओर चुपचाप चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा–"राजन! तुम जो कार्य करते हो, वह भले ही नीच कार्य हो, फिर भी तुम विजय की भांति जनता का हित चाहते होगे। श्रम को भुलाने के लिए मैं तुम्हें विजय की कहानी सुनाता हूँ। सुनो!"

बेताल यों कहानी सुनाने लगा: मालव राजा मार्तण्ड वर्मा का इकलौता पुत्र विजय है। उपनयन के होते ही विजय शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने देश को पारकर दूसरे देश के एक प्रसिद्ध गुरुकुल में पहुँचा। वहाँ पर उसने युद्ध विद्याओं के साथ राजनीति, धर्मशास्त्र इत्यादि का अध्ययन किया। कुछ वर्ष बाद वह युक्त वयस्क हो गया।

बेताल कथाएँ

एक दिन गुरुकुल के अधिपति एक महर्षि ने विजय को निकट बुलाकर आदेश दिया–"बेटा! तुम्हारी सारी विद्याएँ समाप्त हो गई हैं। तुम्हें युवराजा के रूप में अभिषेक पाने की आयु भी प्राप्त हो गई है। अब तुम अपने देश को लौट जाओ, जनता को सुखी व संपन्न बने रहने लायक़ शासन करो। मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि तुम दीर्घायु हो।"

इसके बाद विजय अपने गुरुजी से आज्ञा लेकर घोड़े पर सवार हो अकेले ही अपने देश की ओर चल पड़ा। वह अपने देश की सीमा पारकर ज्यों ज्यों आगे बढ़ता गया त्यों त्यों उसे एक बात स्पष्ट होती गई। वह यह कि उसके पिता का शासन अत्याचारों से भरा हुआ है। जनता उस शासन में नाना प्रकार की यातनाएँ झेलते राजा की निंदा ही नहीं कर रही है, बल्कि मौक़ा मिलने पर विद्रोह करने के लिए तैयार बैठी है। गाँवों के अधिकारी भी जनता के क्रोध से डरकर अराजक स्थिति को नियंत्रण में लाने की हिम्मत नहीं कर पा रहे हैं। विजय ने जिन छोटे व बड़े गाँवों को देखा, सबकी यही हालत है। जहाँ भी देखो, लूट, चोरियाँ, गरीबी, करों का बोझ, अधिकारियों के अत्याचार प्रबल हैं। आखिर विजय के सामने यह कहने के लिए भी कोई व्यक्ति नहीं आया कि वह युवराजा है। उसे लगा कि राजा के पुत्र का आदर करने का सद्‌विचार किसी में नहीं है। इसलिए वह जहाँ भी गया, अपना नाम विनय बताया। जिसने उसका परिचय पूछा, उसे यही बताया कि वह मालव के दरबार में नौकरी प्राप्त करने जा रहा है।

एक वृद्ध ने विजय से यहाँ तक बताया–"बेटा! मालव दरबार के पतन का समय निकट आ गया है। तुम जैसे सभी युवक चंपारण्य में सुधीर के अधीन सैनिकों के रूप में प्रशिक्षण पा रहे हैं। आज नहीं तो कल सुधीर ही मालब देश का राजा

बनेगा। वह राजा मार्ताण्ड वर्मा पर आक्रमण करने के लिए उचित समय की प्रतीक्षा कर रहा है। यह भी सत्य है कि उसके विश्वासपात्र व्यक्ति भी दुर्ग में हैं। ज्यों ही वे संकेत देंगे त्यों ही क़िले का पतन होगा। इसके साथ जनता की तक़लीफ़ें भी दूर हो जाएँगी।"

राज्य की यह दुरवस्था देख विजय विस्मय में आ गया। वह चंपारण्य के रास्ते का पता लगा कर वहाँ पर पहुँचा। उस जंगल में पहाड़ों के बीच एक महा नगर था जिस में लगभग एक लाख युवक थे। वे पहाड़ी जातियों के लोगों के बीच संचार करते उनको अपने विश्वास में लेकर उनमें राजद्रोह की भावनाएँ भर रहे थे। सुधीर को वे लोग अपने राजा के रूप में मानते थे। विजय को यह भी मालूम हुआ कि पहाड़ी जाति के वीर बड़ी समर्थता के साथ उस प्रदेश की रक्षा कर रहे हैं। राजा की तरफ़ से जो भी गुप्तचर उस प्रदेश में प्रवेश करता, वह प्राणों के साथ लौटता न था। कुछ गुप्तचर मर गये, शेष सुधीर की सेना में मिल गये।

राजा मार्ताण्ड वर्मा ने सेना की एक टुकड़ी को उस प्रदेश में भेजा। मगर जब वे सैनिक पहाड़ी घाटी को पार कर रहे थे, तब ऊपर से पत्थर बरसने के कारण वे सब मर गये।

विजय ने जब चंपारण्य में प्रवेश किया तब चार जंगली युवकों ने उसको घेर कर उसका नाम, पता और काम भी पूछा।

विजय ने जवाब में यों कहा—"मेरा नाम विनय है। मैं सभी युद्ध विद्याएँ जानता हूँ। सुधीर की सेना में शामिल होने आया हूँ।"

इस पर जंगली युवक विनय को एक बड़ी गुफा में ले गये। वहाँ पर सुधीर एक ऊँची शिला पर खड़े हो कुछ समझा रहा था। उसके आगे अनेक युवक बैठे उसकी बातें ध्यान से सुन रहे थे।

विजय भी उन युवकों के बीच बैठ कर सुधीर की बातें सुनने लगा।

"राजा के माने कौन होता है? बलवान व्यक्ति राजा बनता है। अपने शासन के द्वारा जनता को जो व्यक्ति सुख और रक्षा प्रदान कर सकता है, वही अपने शासन को क़ायम रख सकता है। राजा मार्ताण्ड वर्मा न शक्ति रखता है और न विवेक ही। वह यह सोचता है कि उसके पिता व दादा राजा थे, इसलिए वह भी राजा है। मगर सच बात तो यह है कि उसके दादा राजा के रूप में पैदा नहीं हुए। वे एक साधारण सेनापति थे। अपने असमर्थ राजा का वध करके वे राजा बन बैठे थे। मार्ताण्ड वर्मा के पिता ने विवेकपूर्वक राज्य करके जनता की सद्भावना प्राप्त की और अपने राज्य को क़ायम रखा। मार्ताण्ड वर्मा किसी भी प्रकार से राजा बनने योग्य नहीं है, इसलिए हम उसका वध करेंगे। उसकी मौत पर जनता उत्सव मनायेगी और अपने राजा का खुद निर्णय करेगी।"

इस प्रकार सुधीर अपने विचार प्रकट कर रहा था। उसके मुंह से निकलनेवाला प्रत्येक शब्द विजय के मन में बैठता गया। सुधीर के भाषण के बाद जंगली युवक विजय को उसके सामने ले गये। विजय ने सुधीर से बताया कि उसका नाम विनय है, वह अमुक गुरुकुल में युद्ध विद्याएं प्राप्त कर चुका है, नौकरी के वास्ते मालव देश में लौटते सुधीर के बारे में उसने काफी सुना और उसके अधीन सैनिक बन कर देश-सेवा करने आया है।

सुधीर ने विजय की युद्ध-विद्याओं की जांच की। आश्चर्य में आकर बोला—"हमारे सैनिकों में जान लड़ाकर पीठ दिखाये बिना लड़नेवाले सैनिक हज़ारों हैं, मगर तुम जैसे योद्धा उंगलियों में गिनने के बराबर हैं। युद्ध के समय तुम्हें जिम्मेदारी का पद संभालना होगा।"

सुधीर की बातें सुन विजय ने बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की।

शीघ्र ही सुधीर को दुर्ग में से संकेत मिल गया। उसने अपने सैनिकों को कुछ दलों में बांटकर दल के नेताओं को नियुक्त किया, तब दुर्ग पर हमला किया। विजय एक भारी दल का नेता था।

विद्रोही सेनाओं ने दुर्ग के सामने डेरा डाला। थोड़ी ही देर में दुर्ग की दीवारों पर राजा के सैनिक प्रत्यक्ष हुए। दोनों दल युद्ध के लिए सन्नद्ध थे।

अंधेरा फैल गया। अर्द्ध रात्रि के समय विजय उठ बैठा और शिविर में संचार करने लगा। संचार करते करते वह दुर्ग के द्वार के पास पहुँचा। उसने एक छोटे द्वार पर दस्तक दिया।

भीतर से किसी ने पूछा–"कौन है?"

"मैं युवराजा विजयवर्मा हूँ।" विजय ने उत्तर दिया।

द्वार खुला। भीतर से तलवार हाथ में लिए एक सैनिक दिखाई दिया।

"तलवार म्यान में रख दो। मैं अभी गुरुकुल से लौट रहा हूँ। शत्रु सैनिकों के बीच से निकल कर आना बड़ा मुश्किल हुआ। मैं राजमहल में जाना चाहता हूँ। मेरे साथ एक सैनिक को भेज दो।" विजय ने एक सांस में कह डाला।

द्वार के पास एक सैनिक को पहरे पर रखकर द्वार खोलनेवाला सैनिक ही

विजय के साथ राजमहल तक पहुँचा। राजमहल का पहरा देनेवाले प्रधान अधिकारी ने विजय को पहचान लिया, उसके चरणों में प्रणाम करके पूछा– "युवराज! आप कब पधारे?" ये शब्द सुनने पर विजय के साथ आया हुआ सैनिक संतुष्ट हो वापस चला गया।

अपने पुत्र के आगमन का समाचार सुनते ही मार्ताण्ड वर्मा उठ बैठा।

"हमें एकांत में बात करनी है!" विजय ने कहा। उसने अपने पिता की बातों पर ध्यान न दिया।

दोनों जब एक कक्ष में जाकर बैठ गये, तब मार्ताण्ड वर्मा ने अपने पुत्र से पूछा–

"कल सुबह तो बातें हो सकती थीं! ऐसी जरूरी बात क्या है!"

"आप को तत्काल इस राज्य को छोड़ भाग जाना होगा। जनता आप के शासन से द्वेष करती है।" विजयवर्मा ने समझाया। मार्ताण्ड वर्मा ने क्रोध में आकर पूछा-"क्या मेरे जीवित रहते तुम राजा बनना चाहते हो? क्या जनता तुम्हीं को राजा बनाना चाहती है?"

"जी हाँ!" इन शब्दों के साथ विजयवर्मा ने तलवार खींचकर अपने पिता का सिर काट डाला।

कुछ ही क्षणों में यह समाचार अंत:पुर में फैल गया, फिर सारे दुर्ग में यह खबर फैल गई। मंत्री तथा सेनापतियों ने आकर विजयवर्मा से मंत्रणा की। किसी ने भी विजयवर्मा की निंदा नहीं की; बल्कि कुछ लोगों ने उसकी तारीफ़ तक कर दी।

सुबह तक मंत्रणा चलती रही। सवेरा होते ही विजयवर्मा का राज्याभिषेक हो गया।

"दुर्ग के बाहर डेरा डाले हुए सैनिकों के साथ संधि का प्रस्ताव करो। उनके नेता सुधीर का दुर्ग में आदरपूर्वक स्वागत करो।" विजयवर्मा ने अपने मंत्रियों को आदेश दिया।

सारा कार्यक्रम विजय की योजना के अनुसार संपन्न हुआ। सुधीर ने दुर्ग में प्रवेश करके यह जान लिया कि विनय ही राजा है और उसने जनता के शत्रु मार्ताण्ड वर्मा का वध किया है, इस पर वह बहुत प्रसन्न हुआ।

"तुम जैसे जनता के हितैषी का राजा बनना देश की प्रजा का भाग्य ही माना जाएगा। मैं आशा करता हूँ कि तुम्हारा शासन जनता के लिए सुखदायक होगा" सुधीर ने विजयवर्मा से कहा।

"इस महान जिम्मेदारी को संभालने में तुम्हारी सहायता की ज़रूरत है मेरे प्रधान सेनापति का पद स्वीकार शासन के कार्यों में मुझे सलाहें दिया

करो।" विजयवर्मा ने सुधीर से निवेदन किया। सुधीर ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया।

विजयवर्मा ने गुरुकुल में जो शिक्षा प्राप्त की, वह बेकार नहीं गई। उसने न्याय तथा धर्म का आचरण करते जनता के हित में अनेक वर्षों तक राज्य किया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा– "राजन, विजयवर्मा के इस व्यवहार का वास्तविक कारण क्या है? क्या गुरुजी का आशीर्वाद है? या सुधीर के विचारों के अनुसार जनता के प्रति प्रेम या पिता के प्रति द्वेष? इस प्रश्न का समाधान जानते हुए भी न दोगे तो तुम्हारा सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इस पर विक्रमार्क ने कहा–"राजा तो नियंता होते हैं! उपदेश उनमें परिवर्तन नहीं ला सकते। सभी राजा जानते हैं कि शासन कार्य जनता के हित में चले। मगर ऐसा शासन नहीं होता तो उन्हें दण्ड देने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए राजा नियंता बनकर शासन करने का प्रयत्न करते हैं। मगर विजयवर्मा ने सुधीर से मिलने के बाद एक बात जान ली। यदि उत्तम नेतृत्व रहा तो नियंता राजा को जनता दण्ड दे सकती है। यह बात सच है कि सुधीर के भाषण ने विजयवर्मा को नियंता बनने से रोका। अब सवाल यह है कि उसने अपने पिता का वध क्यों किया? उसने समझ लिया कि यदि युद्ध हुआ तो किसी भी हालत में उसका पिता मारा जाएगा। इसीलिए पिता से अनुरोध किया कि वह राज्य को त्याग दे। मगर उसके पिता ने नहीं माना। युद्ध में यदि विजय का पिता मारा जाएगा तो सुधीर अवश्य राजा बन जाएगा। इसलिए युद्ध के होने से रोक कर विजय स्वयं राजा बन बैठा, सुधीर को सेनापति बनाकर उसने अपने स्वार्थ की सिद्धि कर ली।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

१५९. नवीनतम अग्निपर्वत

संसार भर में करोड़ों अग्नि पर्वत हैं। मगर ऐतिहासिक युग में नये रूप में छे ही अग्नि पर्वत पैदा हुए, उनमें से अत्याधुनिक अग्नि पर्वत "परिकुटिन" है। २० फ़रवरी १९४३ को मेक्सिको देश के एक मकई के खेत में इसका जन्म हुआ। उस खेत में बहुत दिनों से एक गड्डा था। उसमें से भूगर्भ की ध्वनियाँ बराबर सुनाई देती थीं। २० फ़रवरी को उस गड्डे में से ज़मीन में एक लंबी दरार बनी। उसमें से धूल तथा सीटी जैसी ध्वनि निकलने लगी। खेत के मालिक के साथ तीन और लोगों ने इसको देखा। जनता इकट्ठी हुई। वैज्ञानिक भी वहाँ पर पहुँचे।

शीघ्र ही खेत में एक सुरंग पैदा हुआ। उसमें से पहले जले हुए लाल लाल पत्थर और बाद को लावा भी निकलने लगा। भूकंप, बादलों की गड़गड़ाहटें तथा बिजली की कौंधें भी दिखाई दीं। उस दिन रात के १० बजे तक ३० फुट ऊँचा एक गोपुर निकल आया। दूसरे दिन तक वह ५० फुट ऊँचा बना, २६ तारीख़ तक २०० फुट तक बढ़ा, क्रमश: १५०० फुट तक बढ़कर चारों ओर फैलने लगा। उसमें से जो लावा निकला, उसने दो गाँवों, खेतों तथा जंगलों को भी ध्वस्त किया।

कहानियों का लाभ!

एक गाँव में कृष्णशर्मा नामक एक ब्राह्मण था। उसने वेद, शास्त्र, पुराण आदि सब का अध्ययन किया। साथ ही वह संपन्न था, इसलिए धन कमाने का कोई यत्न किये बिना प्रसन्नतापूर्वक अपना समय बिताता था। शाम के समय गाँव के कई लोग उसके घर आया करते थे। कृष्णशर्मा समयानुकूल तरह-तरह की कहानियाँ सुनाकर उनका मनोरंजन किया करता था।

कृष्णशर्मा के वेदशर्मा नामक एक पुत्र था। वह भी अनेक शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर राजदरबार में पंडित नियुक्त हुआ था। लेकिन अपने पिता के जीने का यह ढंग उसे पसंद न था।

एक दिन वेदशर्मा ने अपने पिता से पूछा—"आप अपने अपार ज्ञान का दुरुपयोग करते हुए इस प्रकार कहानियाँ क्यों सुनाते हैं?"

"एक छोटी-सी 'नीति-कथा' के द्वारा हम अनेक कार्य साध सकते हैं! सामनेवाले व्यक्ति की आलोचना कर सकते हैं; जटिल समस्या को सरलतापूर्वक समझा सकते हैं। दूसरों का मनोरंजन कर सकते हैं। मेधा को तेज बना सकते हूँ।" कृष्णशर्मा ने समझाया। इस उत्तर से वेदशर्मा संतुष्ट नहीं हुआ। फिर भी वह मौन रहा।

एक बार वेदशर्मा को राज्य के काम पर समुद्र पार कर मयूर देश में जाना पड़ा। कृष्णशर्मा को अपने पुत्र को इतनी दूर अकेले भेजना पसंद न था, इसलिए वह भी उसके साथ चल पड़ा।

मयूर देश में पहुँचते ही एक-दो दिनों में वेदशर्मा ने अपना कार्य पूरा किया। वहाँ पर उसके सम्मान में एक दावत का प्रबंध हुआ। उस देश का राजा जानता था कि वेदशर्मा और उसका पिता

शाकाहारी हैं और शराब भी नहीं पीते। इसलिए शाकाहारी दावत का प्रबंध किया गया।

मयूर देश के दरबारी विदूषक ने वेदशर्मा का परिहास करना चाहा। दावत के वक़्त वह बड़ी विनयपूर्वक वेदशर्मा के निकट पहुँचा, अनेक प्रकार की शराबों का नाम लेकर पूछा—"आप इनमें से कौन-सी चीज़ पसंद करेंगे?"

वेदशर्मा ने विस्मय में आकर बताया कि वह इन चीज़ों से बिलकुल अपरिचित हैं।

महाराजा जैसे लोग शिष्टाचार के नाते हँसे नहीं, मगर कई लोग वेदशर्मा के अज्ञान पर हँस पड़े।

इस पर कृष्णशर्मा ने विदूषक से कहा—"इस हँसी को देख मुझे बकों की हंसी याद आती है!"

"बकों की हँसी? सो कैसी?" विदूषक ने पूछा।

"वैसे बात कुछ नहीं, एक बार मानस सरोवर का राजहंस रास्ता भटक कर बकों की झुंड में जा उतरा। बकों ने उससे नाना प्रकार के सवाल पूछे। हंस ने बड़ी नम्रता के साथ उनके जवाब दिये, इस पर बकों ने पूछा—'तुम क्या खाते हो?' हंस ने उत्तर दिया—'मैं कोमल कमल-नाल खाता हूँ।' 'क्या तुम घोंघे और केकड़े नहीं खाते?' बकों ने पूछा। राजहंस ने बताया—'मैं तो ये सब नहीं जानता।' इस पर सारे बक ठठाकर हँस पड़े।" कृष्णशर्मा ने जवाब दिया।

इस बार महाराजा के साथ सब लोग हंस पड़े। विदूषक का चेहरा पीला पड़ गया।

दावत के समाप्त होने पर विदूषक ने देवशर्मा और उसके पिता को रात को अपने घर खाने के लिए निमंत्रण दिया। उस रात को वे दोनों विदूषक के घर खाने गये। विदूषक ने अनेक लोगों को खाने के लिए निमंत्रण दिया था। सब के साथ पिता-पुत्र को भी गाय का माँस

परोसा गया। इस पर कृष्णशर्मा ने आपत्ति उठाई।

विदूषक ने अपनी भूल स्वीकार की और यों कहा: "मैं भी इस देश में आने के पूर्व शराब तथा माँस को छूता न था। मगर यहाँ पर अपना स्थिर निवास बनाने के बाद देश और काल की स्थिति को ध्यान में रखकर मैंने अपनी आदतें बदल लीं। आप लोग भी ऐसा क्यों नहीं करते?"

इस पर सब लोग कुतूहलपूर्वक कृष्णशर्मा की ओर ताकने लगे कि इस प्रश्न का वह क्या उत्तर देगा!

"आदतों को बदलना व्यक्ति के स्तर पर निर्भर होता है। पुराने जमाने में एक सिंह एक मवेशीखाने में फँस गया था। उस मवेशीखाने में जानवर तो नहीं थे, मगर ढेर सारा भूसा पड़ा हुआ था। सिंह कोशिश करके भी बाहर न आ पाया। दो सप्ताह भूख के मारे तड़पता रहा, फिर भी उसने जानवर के माँस का इंतज़ार किया, मगर घास का स्पर्श तक नहीं किया।" कृष्णशर्मा ने कहा।

इस बार भी विदूषक का पराभव हुआ। उसने कृष्णशर्मा से माफ़ी माँगी।

तब जाकर वेदशर्मा को अपने पिता की कहानियों का प्रभाव मालूम हो गया। लौटती यात्रा में उसने अपने पिता की प्रशंसा की और कहा–"आप ने जो कहानियाँ सुनाईं, सो मैं भी जानता हूँ,

लेकिन मैं यह नहीं जानता था कि उनका इस रूप में उपयोग किया जा सकता है। मैंने प्रत्यक्ष देखा कि कहानियों के द्वारा सामनेवाले का कैसे पराभव किया जा सकता है और दिमाग को कैसे पैना बनाया जा सकता है। आप प्रति दिन कहानियों द्वारा अनेक लोगों का मनोरंजन करते हैं। मेरे सामने एक समस्या है। राजदरबार में मेरे अधीन में कई लोग काम करते हैं। मैं उन सब के प्रति अत्यंत स्नेहभाव रखता हूँ। इसको मेरी कमजोरी मानकर उन लोगों ने मेरा सही ढंग से आदर करना छोड़ दिया है। इसलिए मैं आजकल उनके प्रति कठिन व्यवहार करता हूँ। अब वे लोग मुझे देख काँप उठते हैं, पर इससे मुझे संतोष नहीं है। मैं चाहता हूँ कि वे लोग मेरे प्रति आदर का भाव रखें, मुझ से डरे नहीं।"

कृष्णशर्मा ने मुस्कुराकर कहा—"यही समस्या एक साँप के सामने उपस्थित हुई। उसने एक मुनि के पास जाकर पूछा— 'महात्मा, आप ऐसा उपाय बताइए कि लोगों के मन में मेरे प्रति घृणा और भय भी न हो।' मुनि ने उसे समझाया— 'तुम किसी की हानि मत करो।' उस दिन से साँप साधु स्वभाव का बन गया। शीघ्र ही उसका स्वभाव सब पर प्रकट हो गया। छोटे बच्चे भी उसको सताने लगे। उसकी बुरी हालत पर मुनि को दया आ गई। उसने समझाया—'तुमने मेरी सलाह को गलत समझा। मैंने तुम से कहा था कि तुम मनुष्यों को काटो मत' मगर मैंने यह नहीं बताया कि तुम फुत्कारो मत। तुम किसी की हानि मत करो, यदि कोई तुम्हारी हानि करनेवाले हो तो उस उक़्त तुम फुत्कारो।"

तब जाकर वेदशर्मा की समझ में आया कि उसे अपने अधीन काम करनेवालों के साथ कैसा व्यवहार करना है। उस दिन से छोटी-सी कहानियों के द्वारा होनेवाले लाभ को समझकर उसने भी कहानियाँ सुनाना शुरू किया।

जुड़वीं राजकुमारियाँ

कर्मपूर के राजा बोपदेव के केवल दो पुत्रियाँ थीं, दोनों जुड़वीं राजकुमारियाँ थीं। उनमें से एक गोरी थी जिसका नाम श्वेता था। दूसरी लड़की काली थी, उसका नाम कृष्णा था। रंग में अंतर होने पर भी दोनों की रूप-रेखाएँ समान थीं। दोनों लाड़-प्यार में पलीं, धीरे-धीरे दस वर्ष की हो गईं।

एक दिन श्वेता उद्यान में टहल रही थी, तब एक पेड़ पर से पक्षियों का एक घोंसला नीचे आ गिरा। दोनों कन्याएँ डर कर जोर-शोर से रोने लगीं। उनका रोना सुनकर परिचारिकाएँ दौड़ी दौड़ी आ गईं। उन लोगों ने पक्षियों का घोंसला देखा। उसमें दो अण्डे थे। परिचारिकाओं ने अण्डों सहित उस घोंसले को चमेली के पौधों की झाड़ी में फेंक दिया और राजकुमारियों को साथ लेकर राजमहल के भीतर चली गईं। मगर डरने की वजह से राजकुमारियाँ बुखार का शिकार हो गईं। इलाज कराने पर बुखार नहीं उतरा।

एक दिन रात को राजा ने एक विचित्र सपना देखा। उस सपने में राजा ने पांच रंगोंवाले एक पक्षी को देखा। उस पक्षी ने मानव की बोली में राजा से यों कहा:

"राजन! मैं देव पक्षी हूँ। मैंने आप के बगीचे में एक पेड़ पर घोंसला बना कर उसमें दो अण्डे दिये। उन्हें सेंककर उन पक्षियों को मैंने आप की राजकुमारियों को भेंट करना चाहा। मगर आप की मूर्ख परिचारिकाओं ने उन अण्डों को चमेली की झाड़ियों में फेंक दिया है।"

"मैं अभी उन अण्डों को ढूंढवा कर मंगवा देता हूँ।" राजा ने जवाब दिया।

श्री ए. सी. सरकार, जादूगर

"अब यह संभव नहीं है। उन अण्डों का फूटना तथा उनमें से बच्चों का उड़ जाना एक साथ हो गया है। वे दोनों छोटे पक्षी इस वक़्त आप के राज्य के पश्चिमी पहाड़ की चोटी पर हैं। तुम खुद उस चोटी पर चढ़ जाओ, उन पक्षियों को लाकर उन्हें स्वादिष्ट खाना खिलाओ। यदि वे प्रसन्न हो गये तो तुम्हें दो अण्डे देंगे। पांच साल बाद वे अण्डे रत्नों के रूपों में बदल जायेंगे। उन पक्षियों को वापस लाते ही तुम्हारी लड़कियों का बुखार जाता रहेगा।" पक्षी ने कहा।

"उस पहाड़ की चोटी सीध में है। उस पर चढ़ना असंभव है। आज तक कोई भी उस चोटी पर चढ़ा न होगा।" राजा ने उत्तर दिया।

"मैं यह नहीं जानता कि तुम उस पर कैसे चढ़ पाओगे? मगर यह बात सच है कि तुम जब तक उन पक्षियों को न लाओगे, तब तक तुम्हारी लड़कियों का बुखार नहीं उतरेगा! सुनो, एक बात और है। अण्डे जब रत्नों में बदल जायेंगे, तब उनमें से एक सफ़ेद होगा, दूसरा गुलाबी रंग का होगा। श्वेता नामक लड़की को गुलाबी रंग के रत्न को हाथ में लेना होगा। कृष्णा सफ़ेद हीरे को ले। ऐसा न हो तो दोनों के लिए खतरा पैदा होगा।" यों समझा कर पक्षी गायब हो गया।

राजा बोपदेव नींद से जाग पड़ा। रानी को अपने सपने का वृत्तांत बताया।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजा ने अपने मंत्रियों को बुला भेजा, उनके सामने सपने का वृत्तांत रखा। पर मंत्री कोई सलाह दे न पाये। इस पर राजा ने मंदिर में जाकर भगवान की प्रार्थना की।

अचानक भगवान की मूर्ति के नीचे से एक गोह बाहर आयी, दीवार पर रेंग कर, पुनः उतर आयी और राजा के निकट आकर खड़ी हो गयी।

इस पर राज पुरोहित ने कहा–"महाराज, भगवान ने आप के प्रति अनुग्रह करके आप की सहायता के लिए गोह को भेज दिया है।"

"यह मेरी सहायता कैसे कर सकेगी?" राजा ने पूछा।

"उसीने स्वयं मार्ग दिखाया! दुर्ग की दीवारों को पार करने में गोह से बढ़कर कोई दूसरा प्राणी काम नहीं दे सकता। उसकी पकड़ अनुपम होती है। उसकी कमर में रस्सी बांध कर पहाड़ की चोटी पर भेज दे, तो आप उस रस्सी को पकड़ कर निर्भय ऊपर चढ़ सकते हैं।" राज पुरोहित ने युक्ति बताई। फिर भी सुरक्षा की दृष्टि से चोटी के नीचे मजबूत जाल बिछाये गये ताकि राजा के गिरने पर चोट न आवे। गोह को शक्तिशाली भोजन खिलाया गया। एक दिन सवेरे राजा अपनी तलवार, खाना तथा पानी लेकर पहाड़ की ओर चल पड़ा।

गोह की कमर में हल्की व मजबूत रस्सी बांध दी गई और उसको पहाड़ की चोटी पर भेज दिया गया। उसके ऊपर पहुँचते ही दो सैनिकों ने रस्से को खींचकर पकड़ा, झट गोह चट्टान से चिपक गई, दो व्यक्तियों ने रस्सी पकड़ कर खींचा, फिर भी गोह ने अपनी पकड़ ढीली नहीं की। इसके बाद राजा ने भगवान का स्मरण किया और उस रस्सी को पकड़ कर ऊपर चढ़ गया।

नीचे राजा का परिवार और रानी डरते हुए खड़ी रह गई।

राजा जब चोटी पर पहुँचा तब तक सूर्यास्त हो रहा था, चन्द्रमा निकल आया। राजा ने रस्सी को गोह की कमर से खोल दिया और उसकी एक छोर को एक मजबूत चट्टान से बांध दिया। चांदनी में राजा को एक नाटा पेड़ दिखाई दिया। उसके निकट जाने पर पेड़ पर दो पक्षी दिखाई दिये। उस पेड़ के तने से दो सिरोंवाला एक सर्प लिपटे हुए था। राजा को देखते ही अपने दोनों फणों को फैलाये मुंह खोले वह सर्प आगे बढ़ा। राजा ने एक ही बार से सांप को मार डाला। सांप नीचे गिर गया।

बोपदेव जब पक्षियों तथा गोह को लेकर चोटी से उतर कर नीचे आया, तब तक सवेरा होने को था। गोह को नीचे उतारते ही विचित्र ढंग से उसने अपने पंख फैलाये और आसमान में उड़ गया। पक्षियों के साथ राजा के महल में प्रवेश करते ही राजकुमारियों का बुखार उतर गया। दूसरे दिन पक्षियों ने दो अण्डे दिये और गायब हो गये।

राजा ने उन अण्डों को एक चांदी की टोकरी में रखवा कर लोहे की पेटी में बंद किया।

क्रमश: पांच साल बीत गये। श्वेता और कृष्णा पंद्रह साल की हो गईं। राजा ने लोहे की पेटी खोलकर देखा तो उसमें से कांति की किरणें फूट पड़ीं। अण्डों की जगह दो रत्न चमक रहे थे। एक सफ़ेद था और दूसरा गुलाबी रंग का रत्न था।

राजा ने जिस वक़्त उन्हें बाहर निकलवाया, उस वक्त राजकुमारियां भी वहां पर उपस्थित थीं।

राजा ने अपनी पुत्रियों से कहा– "बेटियो, ये रत्न तुम्हीं लोगों के लिए हैं। इनसे तुम्हारी क़िस्मत खुल जाएगी। तुम यह चिंता न करो कि कौन-सा रत्न किसका है। आज शाम को तुम दोनों को

सफ़ेद चंपा के फूल सुराही में रखकर दूँगा। तुम रोज़ उन फूलों का परिशीलन करते जाओगी तो तुम्हें खुद मालूम हो जाएगा कि उन में से कौन सा रत्न किसका है?"

उसी दिन राजा ने दरबारी जादूगर मायापाल को गुप्त रूप से अपने रहस्य कक्ष में बुला भेजा और कहा–"मायापाल! रत्न आ गये हैं, अब तुम्हें अपने जादू का प्रयोग करना होगा।"

"महाराज! यह कार्य भी आप ही कर सकते हैं न? यह कोई कठिन कार्य थोड़े ही है? श्वेता को दिये जानेवाले सफ़ेद चंपा के पुष्प-पात्र में थोड़ी लाल स्याही मिला कर इस तरह बिठाइए जिससे फूल की नली उसमें डूबी रहे। धीरे-धीरे पुष्प की पंखुड़ियाँ अपने आप गुलाबी रंग में बदल जायेंगी। प्रयोग की यह विधि मैंने आप को पहले ही बता दी है।" मायापाल ने समझाया।

"तुमने तो बताया है, फिर भी यह कार्य तुम्हारे हाथों द्वारा हो जाय तो अच्छा होगा।" राजा ने कहा। इस पर दोनों हँस पड़े।

उस दिन रात को श्वेता तथा कृष्णा को दो गुच्छे सफ़ेद चंपा के फूल पात्रों के साथ प्राप्त हुए। पात्रों पर दोनों के नाम स्पष्ट रूप से अंकित थे। दोनों ने उन पात्रों को अपने-अपने कमरों में रख लिया और पुष्पों की निगरानी करती रहीं। कृष्णा को जो फूल दिये गये, वे पहले ही जैसे सफ़ेद रह गये, लेकिन श्वेता को दिये गये फूल दूसरे दिन से अपने रंग बदलने लगे।

यह खबर मालूम होते ही राजा बोपदेव बहुत प्रसन्न हुआ और बड़ी शीघ्रता से अपनी पुत्रियों के यहाँ गया और पूछा– "बेटियों, अब तुम्हें मालूम हो गया है न कि कौन-सा रत्न किसका है?" इन शब्दों के साथ राजा ने थाली में स्थित रत्न दिखाये। श्वेता ने गुलाबी रंग के रत्न को अपने हाथ में लिया तो कृष्णा ने सफ़ेद रत्न को।

अब मायापाल की बात रही। राजा से उसको बढ़िया पुरस्कार प्राप्त हुआ।
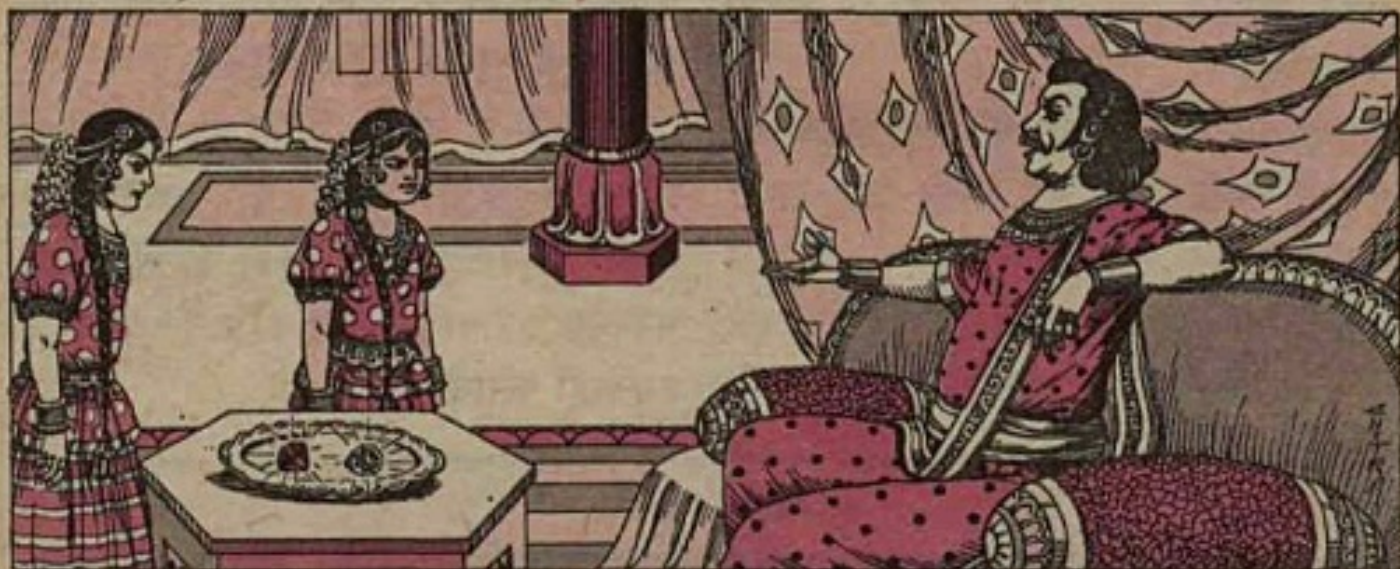
लोभ का फल

सुदर्शन और विमला नामक एक दंपति था। सुदर्शन खाने के पीछे दिल खोलकर खर्च करता था मगर कपड़ों के पीछे खर्च करना उसकी दृष्टि में बेकार था। विमला का स्वभाव बिलकुल इसके विपरीत था। घर की चहार दीवारी के पीछे चाहे कुछ भी खाया जाय, पर लोगों के सामने अच्छा दीखे। यही उसका विचार था। पति तो कभी साड़ियाँ खरीद कर नहीं देता, इसलिए वह अपने मायके से हर साल छे साड़ियाँ मंगवा लेती थीं। मगर सुदर्शन फटे-पुराने वस्त्र ही पहना करता था।

सुदर्शन के कपड़ों में एक बहुत ही पुरानी धोती थी। वह धोती उसे इतनी पसंद थी कि वह उसे चाहकर भी फेंक नहीं पाता था। अपने पति को उस फटी-पुरानी व मैली धोती पहने लोगों के बीच घूमते देख विमला लज्जा का अनुभव करती थी। रोज इस फटी-पुरानी धोती को लेकर पति-पत्नी के बीच झगड़ा होता था।

एक दिन सुदर्शन ने स्नान करके अपनी धोती को धोया और सुखाने ले आया। उसी समय विमला ने वहाँ पर पहुँचकर कहा—"मेरी दीदी आनेवाली है। मेरी मनकों की थैली के थोड़े मनके टूट गये हैं। तुम इसको शहर में ले जाओ और बुनाकर ले आओ; साथ ही अपनी इस पुरानी धोती को कहीं फेंक दो। मेरी दीदी देखेगी तो तुम्हारे मुँह पर हँसेगी।"

सुदर्शन ने अपनी पत्नी की बातों पर ध्यान न दिया, धोती को सुखाते हुए बोला—"क्या तुम्हारी मनकों की थैली की मरम्मत कराना ही मेरा काम है! जाओ। हम नहीं करानेवाले हैं।"

विमला सक्सेना

विमला को अपने पति पर क्रोध आया। धोती को पिछवाड़े में फेंक कर बोली– "इस धोती को घर में सुखाओगे तो सारे घर में बदबू आएगी।"

सुदर्शन ने धीरे से धोती उठाई, पुनः धोकर बरामदे में सुखाया। तब भोजन करके दूकान में हिसाब-किताब लिखने चला गया। विमला सोचने लगी कि अपनी दीदी के आने के पहले इस धोती से कैसे पिंड छुड़ा लिया जाय।

कड़ी धूप में रास्ते से चलते एक बूढ़ा भिखारी उसे दिखाई पड़ा। विमला ने उसको बुलाकर धोती ले जाने को कहा। भिखारी धोती को देख खीझ उठा और यह कहते अपने रास्ते चला गया–"यह सड़ी-गली धोती किस को चाहिए?"

"देखो भाई, एक रुपया देती हूं, इसे लेते जाओ, तुम्हारा पुण्य होगा।" विमला ने गिड़-गिड़ाया। भिखारी एक रुपये के साथ धोती लेकर चला गया।

उस दिन संध्या को जब सुदर्शन घर लौट रहा था, तब वह भिखारी उसे दिखाई दिया। उसके कंधे पर उसकी फटी धोती पड़ी हुई थी; उसने क्रोध में आकर भिखारी का गला दबाते डांटा– "अरे बदमाश! मेरी प्यारी धोती को चुरा कर ले जाते हो?"

"अजी! मैंने चोरी नहीं की। किसी गृहिणी ने इसे जबर्दस्ती मेरे माथे पर डाल दी।" इन शब्दों के साथ भिखारी तेजी से अपने रास्ते चला गया।

सुदर्शन भी भिखारी से भी अधिक वेग के साथ अपने घर पहुँचा, मंदिर में जाते विमला रास्ते में ही उसे दिखाई दी।

"अरी, क्या तुमने मेरी धोती भिखारी को दान कर दी?" सुदर्शन ने पूछा।

"हां, हां! उससे पिंड छूट गया। इसीलिए मंदिर में नारियल फोड़ने जा रही हूं।" विमला मंदिर की ओर चल पड़ी।

सुदर्शन ने निश्चय कर लिया कि किसी भी उपाय से सही उस धोती को फिर से

प्राप्त कर लेना है। वह घर पहुंचा। दीवार पर टंगी मनकों की थैली हाथ में ले पड़ोसिन के यहां जाकर कहा–"बहन जी! विमला के आने पर बता दो कि मैं मनकों की थैली की मरम्मत कराने शहर जा रहा हूं।"

सुदर्शन ने पूछ-ताछ करके जान लिया कि भिखारी गांव के छोर पर स्थित बरगद के नीचे रहा करता है। उस ने बरगद के पास पहुँचकर देखा, तब तक भिखारी लौटा न था। उसकी अंधी औरत पेड़ के तने से सटकर बैठी हुई थी। उसकी बगल में पुरानी पैबंदोंवाली थैली पड़ी थी जिस में चीथड़े भरे थे। उसके हाथ में इमली की एक बेंत थी। सुदर्शन के निकट आने की आहट पाकर अंधी औरत ने उसके पैरों पर बेंत से मारा और कहा–"अबे, तुम कौन हो? मुझ को अंधी जानकर कुछ चुराने आये हो?"

सुदर्शन कराहते हुए बोला–"मैं तुम्हारे मर्द से मिलने आया हूं?"

"तब तो अंधेरा हो जाने पर आ जाओ।" अंधी ने कहा।

सुदर्शन ने जाने का अभिनय किया, पीछे से आकर सावधानी से बरगद पर चढ़कर बैठ गया।

अंधेरा फैलने के बाद भिखारी लौट आया। "न मालूम यह कमबख्त धोती किस मुहूर्त में मेरे हाथ लगी? आज थोड़ा भी खाना न मिला।" इन शब्दों

के साथ उसने सुदर्शन की धोती को चीथड़ों वाली थैली में ठूँस दी। ये शब्द सुनकर सुदर्शन का मन कचोट उठा।

इसके बाद भिखारी ने खाना बनाया, पति-पत्नी ने खाना खाया। आधी रात तक कोई गीत आलापता रहा, तब सो गये। उन्हें गहरी नींद सोते देख सुदर्शन पेड़ से उतर ही रहा था, तभी दो चोर कहीं से उस पेड़ के पास आये और गुप्त रूप से बातचीत करने लगे।

एक ने कहा—"हम इसको कहाँ पर छिपावे?"

"उस चीथड़ों वाली थैली में छिपायेंगे। जाड़े के मौसम के आने तक ये लोग उन कपड़ों को बाहर तक न निकालेंगे।" दूसरे ने कहा। इसके बाद दोनों चोर पेड़ के नीचे अंधेरे में आ गये। भिखारी की चीथड़ों वाली थैली निकालकर उसमें कुछ छिपाया और कहीं चले गये।

चोरों के भागने की आहट सुनकर बूढ़ी जाग पड़ी, चिल्ला उठी—"अबे, तुम लोग कौन हो?" उसने आपनी थैली को टटोल कर देखा, उसे सिरहाने रखकर सो गई।

भिखारियों की थैली में अपनी धोती के साथ चोरों का छुपाया गया माल भी देख सुदर्शन ने सोचा कि किसी भी तरह से सही, उस थैली को हड़प लेना है।

सवेरा होते ही वह पेड़ पर से उतर आया, भिखारी के पास जाकर बोला—"तुम्हारे पास जो चीथड़ों वाली थैली है,
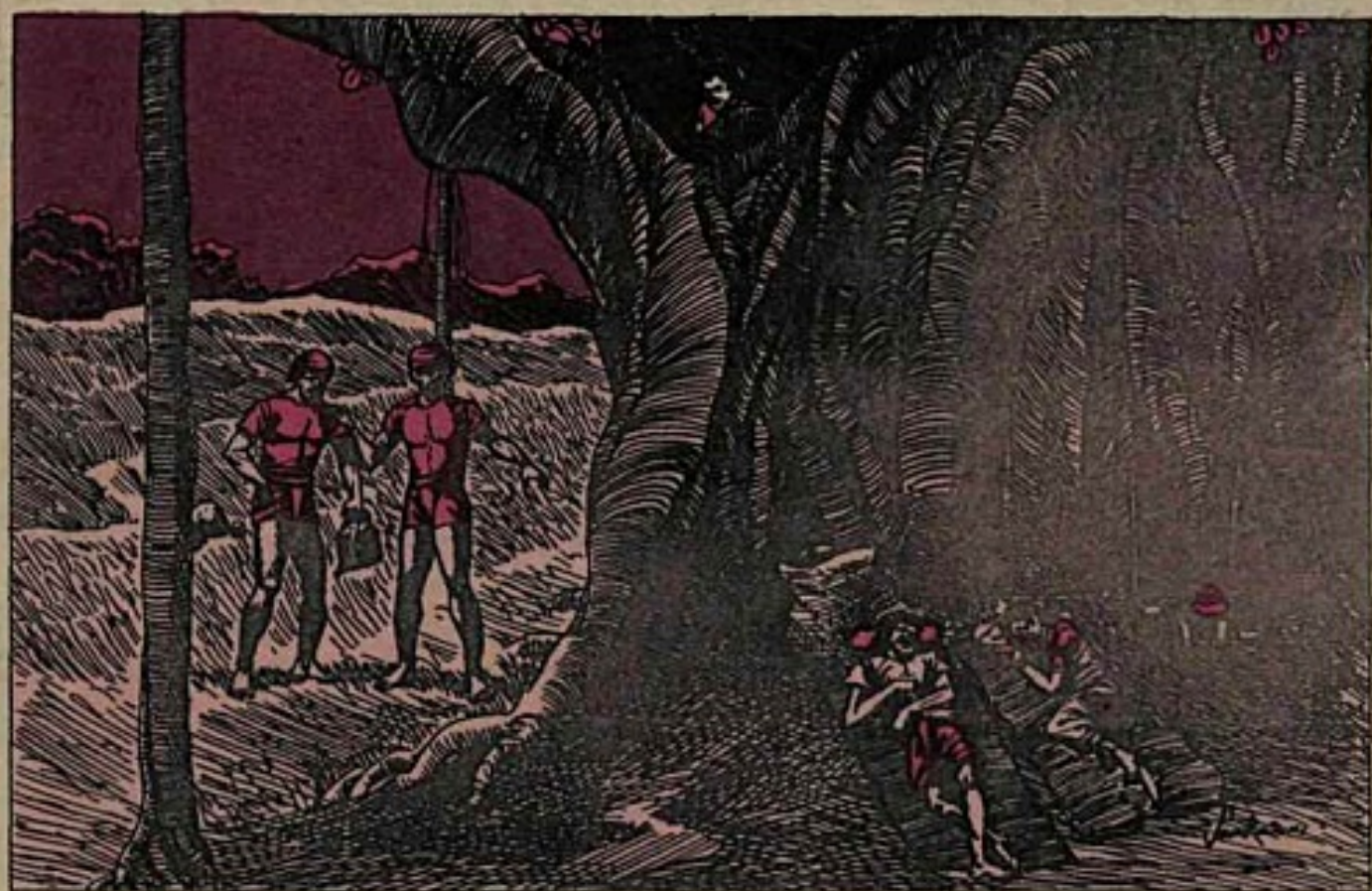
उसे दे दोगे? मुझे तो चीथड़ों की सख्त ज़रूरत आ पड़ी है।"

भिखारी ने कहा–"मैं नहीं दूंगा।"

"बदले में तुम मनकों वाली यह थैली ले लो।" सुदर्शन ने कहा।

अंधी ने मनकों वाली थैली को टटोल कर देखा, उसे वह बहुत भाई। उसने अपने पति से कहा–"चीथड़ों वाली दे दो! यह थैली ले लो।"

फिर क्या था, चीथड़ों वाली थैली को कांख में दबाये सुदर्शन खुशी-खुशी घर पहुँचा।

"तुम रात भर कहाँ पर थे? मेरी मनकों वाली थैली कहाँ?" सुदर्शन को देखते ही उसकी पत्नी विमला ने पूछा।

"तुम्हारी मनकों वाली थैली देकर बदले में यह थैली ले आया हूँ।" इन शब्दों के साथ सुदर्शन ने भिखारियों की थैली दिखाई।

"तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। तुमने कैसा अनर्थ कर डाला? कल शाम को चन्द्रहार टूट गया तो उस थैली में डाल दिया था। मैंने सोचा था, साथ ही सुनार से उसे भी जुड़वा दूं। उस थैली को देकर और बदबूदार चीथड़े ले आये हो?" यों कहते विमला ने अपने पति के हाथ से उस थैली को खींचकर गली में फेंक दिया।

थैली गली में जा गिरी, साथ ही उसके चीथड़े तथा चोरों के द्वारा छिपाया गया चाकू भी बाहर निकल आया। चाकू पर खून के धब्बे थे। चोरों ने पिछली रात को किसी की हत्या की और उस चाकू को उस थैली में छिपा कर भाग गये थे।

गली में लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। शीघ्र ही सिपाही आकर चाकू सहित सुदर्शन को भी बंदी बनाकर ले गये और कारागार में डाल दिया।

इसके बाद सुदर्शन को अपने को निर्दोष साबित करने के लिए बहुत सारा धन खर्च करना पड़ा और उल्टे परेशानी भी हुई।
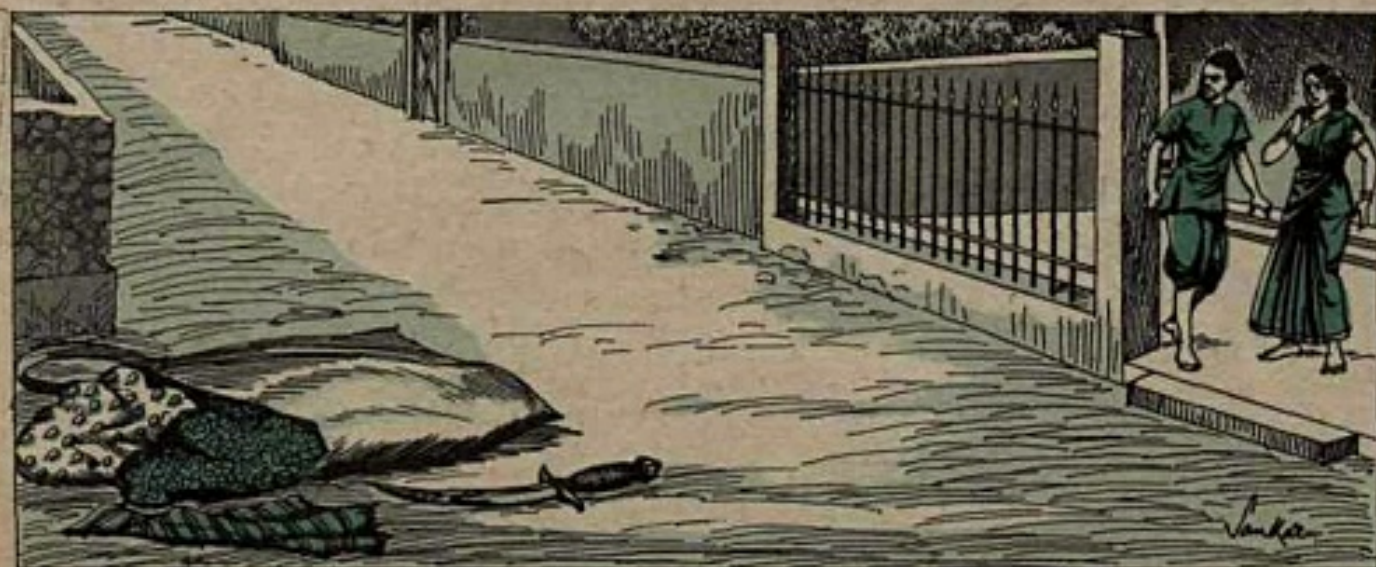
पाप और पुण्य

ताम्रलिप्ति नामक नगर में धनगुप्त नामक रत्नों का एक व्यापारी था। वह नकली रत्नों को असली रत्नों के रूप में बेचकर अनुचित ढंग से धनार्जन करता था। असली रत्न जैसे लगनेवाले हीरों को वह विदेशों में ख़रीदा करता था। मगर वह यह व्यापार बड़ी युक्तिपूर्वक किया करता था, इसलिए उसका पता बिलकुल नहीं चलता था।

व्यापारी स्वयं अपने अनुचरों को जहाज़ लूटने के लिए नियुक्त करता, उनके द्वारा जहाज़ का सारा माल लूटने पर वह भी अन्य व्यापारियों के साथ सिर पीटते हुए रोता कि वह लुट गया है और उसका सारा माल लूटा गया है। बाक़ी व्यापारी सोचते कि वह एक सच्चा व्यापारी है।

एक दिन एक व्यापारी जहाज़ से उतरकर अपने रत्नों के साथ घर लौट रहा था, तब रास्ते में एक सन्यासी से उसकी मुलाक़ात हो गई। सन्यासी ने एड़ी से चोटी तक व्यापारी की ओर देख कहा—"महाशय, कांच के पात्र में भरे रंगीन जल की भांति तुम्हारे भीतर का पाप भी स्पष्ट झलक रहा है। तुम अब भी सही सावधान रहो! वरना अग्निपर्वत की भांति वह पाप तुम्हें छेदकर बाहर प्रकट होनेवाला है।"

ये बातें सुनने पर व्यापारी का दिल कांप उठा। उसने सोचा कि वह सन्यासी कोई सिद्ध पुरुष है। उसने संन्यासी से पूछा—"महात्मा! मुझे क्या करना होगा?"

"यह तो तुम्हारे किये हुए पापों पर निर्भर करेगा! फिर भी तुम भूदान, गोदान और अन्नदान करो! साधू-संतों को दावत दो! तो तुम्हारा पाप मिट जाएगा!" सन्यासी ने उत्तर दिया।

राधाकृष्ण पालीवाल

"दान-पुण्य करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन में हमेशा विदेशों में ही भ्रमण किया करता हूँ। ऐसी हालत में ऐसे पुण्यकार्य करने के लिए फ़ुरसत ही कहाँ?" व्यापारी ने पूछा।

"पुण्यकार्य तो तुम्हारे नाम पर तुम्हारी पत्नी भी तो कर सकती हैं?" सन्यासी ने समझाया और चला गया।

व्यापारी ने घर लौटकर अपनी पत्नी से कहा–"कल से तुम मेरे नाम पर दान-पुण्य करो। थोड़े समय तक गोदान, अन्नदान, पूजा-व्रत आदि पुण्य कार्य दिल खोलकर करो। मुझे तो फ़ुरसत नहीं है, चाहे चितना भी धन खर्च हो जाय, तुम चिंता न करो।"

व्यापारी के मुंह से ये बातें सुनने पर उसकी पत्नी को एक साथ आश्चर्य एव आनंद भी हुआ। पुण्य कार्य करने की उसकी बड़ी इच्छा थी, मगर उसका पति ऐसे कार्य पसंद नहीं करता था।

"आखिर बात क्या है?" पत्नी ने पूछा।

"बात यह है कि एक सन्यासी महोदय ने बताया कि हम बहुत से पाप कर रहे हैं। मेरा शरीर तो पापों का घड़ा है। वह कभी मौक़ा पाकर फूट सकता है! मगर हम लोग तो जान-बूझकर कोई पाप नहीं कर रहे हैं, फिर भी अनजाने में जो पाप कर बैठते हैं, वे भी तो पाप हैं। उनके परिहार के लिए हम थोड़े समय तक दान-पुण्य करेंगे। कमबख्त धन कौन बड़ी चीज़ है! मेरे शरीर में ताक़त रही तो बहुत सा धन कमा सकता हूँ।" व्यापारी ने कहा।

व्यापारी की पत्नी बड़ी प्रसन्न हुई। अपने लिए यह अवसर प्रदान करनेवाले सन्यासी के प्रति उसने मन ही मन प्रणाम किया। उसकी प्रसन्नता देख व्यापारी ने समझाया–"लेकिन एक बात है! तुम अपने घर को धर्मशाला मत बना दो! दान लेने आनेवालों में चोर भी हो सकते हैं। तुम अपने सारे दान-पुण्य धर्मशाला

में ही करो। हम बड़े धनी हैं, यह बात लोगों पर प्रकट क्यों हो?"

दूसरे दिन से दान-पुण्य धर्मशाला में ही शुरू हो गये, व्यापारी रत्न बटोरने के लिए विदेशों में चला गया। उसकी पत्नी के हाथों से गोदान, भूदान, वस्त्रदान, अन्नदान, पूजा, व्रत आदि निरंतर चलते रहें, धन पानी की तरह खर्च होता गया।

लेकिन इसके द्वारा व्यापारी का कोई लाभ न हुआ, उल्टे उसकी हानि ही हुई। वह एक देश में पहली बार नकली रत्नों के बेचने के अपराध में पकड़ा गया। अपना सारा माल जुर्माने में खो गया। साल भर कारागार की सजा भोगकर अपने साथी व्यापारियों के बीच अपमानित हुआ। आखिर घर लौट आया।

घर पहुँचकर देखा कि घर में कुछ बचा नहीं है। धर्मशाला याचकों से भरी-पड़ी है। व्यापारी ने अपने घर पहुँचने की खबर अपनी पत्नी को दी। मगर वह धर्मशाला से लौटी नहीं। उसने स्वयं धर्मशाला में जाकर वहाँ पर इकट्ठी हुई भीड़ को देखा। उसको भीड़ में से किसी ने पहचाना तक नहीं। उसकी पत्नी ने याचकों के हाथ प्रसाद बांटते हुए व्यापारी के हाथ भी थोड़ा प्रसाद देकर कहा–"मुझे आप के लौटने का समाचार तो मिल गया। लेकिन देखते हैं न इस भीड़ को? इन लोगों को छोड़ घर लौटने का मौक़ा नहीं मिला।"

"यह बात तो मैं देख लूंगा। तुम अपने दान-पुण्य बंद कर दो।" व्यापारी ने कहा।

इसके बाद व्यापारी को अपने व्यापार में अपार लाभ होने लगा। नक़ली रत्नों का व्यापार करके उसने अनतिकाल में ही पहले जितना धन कमाया। इस बात पर वह दुखी हुआ कि रास्ते चलनेवाले किसी सन्यासी की बातों में आकर उसने अपना सारा धन लोगों में बांट दिया है।

इसके कुछ महीने बाद व्यापारी रत्नों के साथ घर लौट रहा था, तब वह सन्यासी सामने से गुजरा। उसके साथ अब पांच-छे शिष्य भी थे।

"लगता है कि तुमने मेरी बातों पर ध्यान नहीं दिया। तुम में तो मुझे कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता।" सन्यासी ने व्यापारी से कहा।

व्यापारी ने क्रोध में आकर डांटा-"तुम कैसे धूर्त हो! तुम्हारी बातों में आकर मैंने अपना सारा धन सन्यासी और साधुओं के हाथ बांट दिया। मेरा दिवाला ही निकल गया। आइंदा मैं तुम जैसे लोगों की बातों पर ध्यान देना नहीं चाहता हूँ। जाओ यहाँ से।"

"तुमने जो पुण्य किया, वह अपने पाप जैसे व्यर्थ नहीं जाएगा। असल में बात क्या हुई?" सन्यासी ने पूछा।

व्यापारी अपनी पत्नी की बातें सुन क्रोध में आया। प्रसाद उसके मुंह पर फेंककर बोला-"अरी दुष्टा! मुझसे भी ये लोग तुम्हारी दृष्टि में बढ़कर हैं? तुमने हमारा घर ही लुटा दिया? मैंने तुम से यही करने को कहा था? जो किया, बस! अब घर चलो।"

व्यापारी की पत्नी ने नहीं सोचा था कि उसने जो दान-पुण्य किये, उनका यही परिणाम होगा! वह तुरंत धर्मशाला को खाली करके घर चली गई।

"मैंने जो दान-पुण्य किये, उनका फल क्या हो गया? आप को व्यापार में नुक़्सान क्यों हुआ?" व्यापारी की पत्नी ने पूछा।

"मेरी पत्नी ने सभी प्रकार के व्रत किये, दान दिये, मगर मैं नहीं जानता कि उसका यह सारा पुण्य क्या हो गया? मैंने जो भी व्यापार किया, सब में मुझे नुक़सान ही उठाना पड़ा। नक़ली रत्नों का व्यापार करते एक देश में मैं पकड़ा गया। साल भर कारागार की सजा भोगी। तब घर लौटते ही मैंने अपनी पत्नी के द्वारा दान-पुण्य बंद करवा दिये। फिर से मैंने अपना व्यापार शुरू किया। क़िस्मत ने साथ दी। लाखों रुपये कमाये। रत्न बड़ी आसानी से बदल रहे हैं। चाहे तो तुम खुद देख लो।" व्यापारी ने कहा।

व्यापारी के द्वारा दिखाये गये रत्न देख सन्यासी कुछ नहीं बोला, मौन रहा।

"अब बताओ, तुमने जो बताया, वह पुण्य है? या मैंने जो किया, यह पुण्य है? तुम जैसे नक़ली साधुओं को हमारे राज्य की सीमा के अन्दर घुसने से न रोकना हमारे राजा की बेवक़ूफ़ी है।" व्यापारी ने कहा।

"तुमने खूब कहा!" इन शब्दों के साथ राजा ने अपनी नक़ली दाढ़ी व मूँछें हटाई और असली रूप में प्रकट हो गया।

व्यापारी के मुंह से बात न निकली। राजा के साथ रहनेवाले लोगों ने अपनी नक़ली दाढ़ियाँ हटाईं और व्यापारी को रत्नों के साथ बंदी बनाया। इसके बाद व्यापारी की सुनवाई हुई और राजा

ने उसको आजीवन कारागार का दण्ड सुनाया।

व्यापारी ने कारागार में जाते हुए राजा से पूछा–"महाराज, मेरे कुछ संदेह हैं। क्या उनका उत्तर देने का कष्ट करेंगे?"

"क्यों नहीं? पूछो तो!" राजा ने जवाब दिया।

"आप ने पहली बार मुझे जब देखा, तब मुझको क्यों बंदी नहीं बनाया? उल्टे साधू और सन्यासियों में दान बांटने को क्यों कहा? मेरी पत्नी ने जो पुण्य कमाया, वह मेरे काम में क्यों न आया?" व्यापारी ने पूछा। राजा ने यों उत्तर दिया:

"पगले! मैंने जब तुमको पहली बार देखा, तब तुमको बंदी बनाने के लिए मुझे क्या मालूम था कि तुम धूर्त व्यापारी हो? तुम्हारे चेहरे को देखते ही मैं समझ गया, लेकिन तुम्हारे भीतर पाप के प्रति भय की भावना को देखा, जब तुम दान-धर्म करने को तैयार हो गये तब यह बात पक्की हो गई। फिर भी बिना साबूत के मैं तुमको बन्दी कैसे बनाऊँ? उस दिन से मेरे गुप्तचर तुम्हारे साथ हैं। तुम जो जो करते हो, वह सब मुझे जब तब मालूम हो रहा है।

"अब रहा, तुम्हारे दूसरे सवाल का जवाब! तुम जैसे पापी जो पुण्य करते हैं, वह पाप बन जाता है! वह पुण्य तुम्हारे द्वारा अच्छे कार्य कराना चाहता है, तुम्हारे धोखे में विघ्न डालना चाहता है। वह तुम्हारा हित चाहकर ही वैसा कराता है। तुम्हारे हाथ तुम्हारी पत्नी ने जो प्रसाद दिया, उसको तुमने उसके मुंह पर फेंक दिया। तब तक तुम्हारे साथ जो पुण्य का फल था, वह तुम से दूर हो गया। पाप ने तुम्हारे भीतर प्रवेश करके तुम को नचाया। इस प्रकार वह तुम्हारे पतन का कारण बना!"

राजा के वाक्य समाप्त होते ही सिपाही व्यापारी को कारागार में ले गये।

सच्चा संतोष

एक गृहस्थ के तीन पुत्र थे। वह गृहथ एक खज़ाने में नवीस था। वह अपने पुत्रों को इस तरह पालता आया कि उन्हें कोई कमी व तक़लीफ़ न हो। जब वह बूढ़ा हुआ और उसकी तबीयत भी खराब हो गई, तब अपनी नौकरी को त्याग-पत्र दे वह घर पर ही आराम करने लगा।

पिता ने अच्छी संपत्ति जोड़ ली थी, मगर बेटे खा-पीकर आवारागर्दी करते रहें। इससे बूढ़ा बहुत दुखी हुआ। एक दिन उसने अपने पुत्रों को निकट बुलाकर समझाया–"आज तक मैंने तुम लोगों को पाला-पोसा, तुम लोग जवान भी हो गये हो! मेरे पालन-पोषण करने की जिम्मेदारी भी तुम लोगों की है। मैं तुम में से प्रत्येक को सौ-सौ रुपये देता हूँ। ये रुपये लेकर तुम लोग कहीं भी जाओ, कुछ भी करो। मगर एक साल के अन्दर मुझको प्रसन्न करने के लायक़ काम करके लौट आओ।"

बड़े पुत्र ने सोचा कि धन से बढ़कर मनुष्य को प्रसन्न करनेवाली चीज़ कौन होती है? यह सोचकर वह एक शहर में गया। एक अमीर के यहाँ काम पर लग गया। आराम के समय बोरे ढोने से लेकर बिना संकोच के हर तरह का काम करता गया। साल भर पूरा होते-होते उसके पास दस हज़ार रुपये जमा हो गये। उसने दस हज़ार रुपये खर्च करके एक बढ़िया रत्न खरीदा, घर लौटकर उसे अपने पिता को दिया।

"बेटा! तुमने धन को ही ज्यादा महत्व देकर ताक़त से बढ़कर मेहनत की। देखो तुम कैसे कमज़ोर हो गये हो! तुम्हें देखने पर मुझे दुख होता है।" पिता ने कहा।

दूसरा पुत्र एक वैद्य के यहाँ शिष्य बना, बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति के साथ उसकी

भूपेन्द्र कुमार

सेवा-शुश्रूषा की। उसको प्रसन्न करके एक ऐसी बड़ी औषधी प्राप्त की जो बुढ़ापे को तथा बुढ़ापे में होनेवाली बीमारियों को दूर करती है। उसने भी घर लौटकर वह औषधी अपने पिता को सौंप दी।

"बेटा! मेरे लिए यह औषधी किसलिए? मैंने सभी सुख भोगे हैं। कृत्रिम रूप से प्राप्त यौवन मुझको संतोष प्रदान न कर सकेगा! तुम्हारे इस विचार को देख मुझे दुख होता है।" पिता ने कहा।

तीसरे पुत्र ने एक वृद्ध गुरु के पास जाकर पूछा-"पिता को प्रसन्न करने के लिए पुत्र को क्या करना होगा?"

गुरु ने पूछा-"पहले तुम यह बताओ कि तुम किस विद्या को ज्यादा पसंद करते हो?"

"संगीत से मुझे अधिक प्रेम है!" युवक ने उत्तर दिया।

"तब तुम संगीत सीखो। अगर तुम इस विद्या में प्रवीण बनोगे तो तुम्हारे पिता प्रसन्न हो जायेंगे।" गुरु ने सलाह दी।

इस पर तीसरा पुत्र एक संगीत विद्वान के यहाँ गया। अपने सारे रुपये उसे देकर संगीत का अभ्यास करता रहा। इस प्रकार साल भर संगीत की साधना करके वह संगीत का बहुत बड़ा विद्वान बना। मंदिर में जाकर जब-तब गीत गाने भी लगा। उसके गीत सुनकर जो लोग तन्मय हो उठे, उन लोगों ने जाकर राजा से उसकी प्रशंसा की। राजा ने उस युवक को बुला भेजा, अपने दरबार में उसके गाने का प्रबंध किया। सब ने उसके संगीत की प्रशंसा की। राजा ने उसको दरबारी संगीत विद्वान नियुक्त किया।

तीसरे पुत्र ने अपने पिता को देखने की अनुमति राजा से प्राप्त की, राजा के द्वारा प्राप्त पुरस्कारों को लेकर घर लौटा। पिता ने उस पुत्र को देख प्रसन्न हो कहा-"यही एक पिता के लिए सच्चा संतोष है। पुत्र यदि कीर्तिवान बनता है तो पिता धन्य होता है।"

एक पुण्यतीर्थ में प्रति दिन अनेक यात्री आया करते थे। उनके ठहरने के लिए वहाँ पर कई धर्म-शालाएँ बनी थीं। प्रत्येक धर्मशाला में एक नौकर नियुक्त था। धर्मशाला को साफ़ रखना तथा उसमें ठहरनेवाले यात्रियों के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करना उस नौकर का काम था।

वहाँ के नौकरों में रंगनाथ नामक व्यक्ति बड़ा ही ईमानदार था। एक दिन रंगनाथ की देखरेख में स्थित धर्मशाला में एक यात्री भूल से अपनी सोने की एक माला छोड़कर चला गया। वह माला रंगनाथ की आँखों में पड़ी। ईमानदार रंगनाथ ने उसे हड़प नहीं लिया, बल्कि उसको ले जाकर मंदिर के संरक्षक के हाथ सौंप दिया। संरक्षक ने रंगनाथ की ईमानदारी पर प्रसन्न हो उसको खुश करने के लिए पचास रुपयों का इनाम दे दिया।

उस दिन से मंदिर की प्रबंधकारिणी समिति ने यह निर्णय किया कि ईमानदार नौकरों को पचास रुपये का पुरस्कार दिया जाय। यह समाचार सभी नौकरों को दिया गया।

धर्मशाला के नौकरों में सोमनाथ भी एक था जो रंगनाथ जैसे ईमानदार बिलकुल न था। मगर पुरस्कारों की बात सुनते ही उसके मन में लोभ और दुर्बुद्धि भी पैदा हुई।

सोमनाथ ने एक चाल चली। वह यह थी कि उसका कोई रिश्तेदार यात्री का अभिनय करते सोमनाथ की देखरेख में स्थित धर्मशाला में आकर ठहरे, और जाते वक़्त कोई सोने का गहना या क़ीमती वस्तु जान-बूझकर छोड़ जाये, सोमनाथ उसको

कीर्ति चौधरी

ले जाकर प्रबंधक के हाथ देता और पचास रुपये पुरस्कार के रूप में ग्रहण करता। इसके बाद सोमनाथ के रिश्तेदार आते और अपनी खोई हुई चीज़ का हुलिया देकर उसे वापस ले जाते। इस प्रकार बराबर करते हुए सोमनाथ ने पुरस्कार के रूप में बहुत-सा धन कमाया। यह क्रम लगातार चलता रहा।

कई महीने बीत गये। एक बार प्रबंधक के मन में संदेह हुआ। क्योंकि पुरस्कार का निर्णय करने के बाद यात्रियों की धर्मशाला में यात्रियों द्वारा चीज़ों का भूल जाना अधिक हो गया। तिस पर भी सोमनाथ की देखरेख में रहनेवाली धर्मशाला में ठहरनेवाले अपनी चीज़ें ज़्यादा खो बैठते थे। प्रबंधक को लगा कि इसमें कोई रहस्य होगा। इसलिए उसने सोमनाथ की परीक्षा लेनी चाही। उसने सोमनाथ की निगरानी करने का उचित प्रबंध किया।

एक दिन प्रबंधक ने अपने एक रिश्तेदार को सोमनाथ की देखरेख में रहनेवाली धर्मशाला में यात्री बनाकर भेजा। उसने धर्मशाला को छोड़ते वक़्त जान-बूझकर अपनी हीरे की अंगूठी खुली जगह पर छोड़ दी और चला गया। वह अंगूठी ऐसी जगह डाल दी गई थी जिससे वह बड़ी आसानी से सोमनाथ की दृष्टि में पड़ी। उसको किसी भी दूकान में बेच दे तो आसानी से तीन सौ रुपये हाथ लग सकते हैं। प्रबंधक के हाथ सौंप दे तो सिर्फ़ पचास रुपये ही मिलेंगे। इसलिए सोमनाथ उसको छिपाकर अपने घर ले गया। बेचारा वह यह नहीं जानता था कि उसके पीछे एक अधिकारी भी जा रहा है।

सोमनाथ जब अपने घर में प्रवेश करने लगा तब दो सिपाहियों ने आकर उसको रोका, सोमनाथ पहले तो चौंका, पर बाद सिपाहियों पर अपना रोब जमाने लगा, मगर सिहाहियों ने उसकी तलाशी लेकर अंगूठी प्राप्त की, तब उसके हाथों में हथकड़ियां लगाकर जेल में ले गये।

वाली अभी तक जीवित था। उसने आँखें खोल इधर-उधर देखा। अपने पुत्र के पास खड़ा सुग्रीव उसे दिखाई दिया। इस पर वाली ने सुग्रीव से कहा :

"मैंने तुम को राज्य से भगा दिया और तुम्हारी पत्नी का अपहरण किया, इसके लिए मुझको दोष न दो। मेरे भाग्य में यह न लिखा था कि हम दोनों राज्य का सुख बाँट ले और भातृभाव से रहें, मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। अब मैं मर रहा हूँ, इसलिए तुम वानरों का राजा बनो। मेरी यह अंतिम इच्छा चाहे तुम्हारे लिए दुखदायी भी क्यों न हो, इसकी पूर्ति करो। मेरे लिए अपने प्राणों से बढ़कर यदि कोई है तो वह अंगद है। उसको तुम अपने पुत्र के समान मानो। उसे कोई कमी होने न दो। तुम्हारे सिवा उसके कोई अपना नहीं है। वह तुम्हारे बराबर पराक्रमी है। वह सभी बातों में तुम्हारा मददगार बना रहेगा। सुषेण की पुत्री तथा मेरी पत्नी तारा बड़ी सूक्ष्म बुद्धिवाली है। वह भविष्य में होनेवाली कठिनाइयों को भाँपने में समर्थ है। इसलिए तुम उसकी सलाह का पालन करो, वरना तुम विपदा में फँस जाओगे। मुझे इंद्र ने जो कांचनमाला दी थी, इसे अभी ले लो। यदि मैं मर जाऊँगा तो इसकी कांति जाती रहेगी।"

वाली के वचन सुनकर सुग्रीव ने अपना मस्तक हिलाया और कांचनमाला ले ली।

इसके उपरांत वाली ने अंगद को निकट बुलाकर हित वचन सुनाये। वे ये थे– अंगद ने जिस तरह वाली के साथ बर्ताव किया था, वही बर्ताव वह सुग्रीव के साथ भी करे। सुग्रीव के शत्रुओं के साथ कभी न मिले। सुग्रीव जो भी काम दे, उसे मन लगाकर करे। किसी के साथ हद से ज़्यादा मैत्री न करे और मैत्री किये बिना भी न रहे। ये शब्द सुनाकर वाली ने अपने प्राण त्याग दिये! इस पर वानर सब रो पड़े। उन लोगों ने वाली के महान कार्यों का स्मरण किया। वाली ने गोलभ नामक गंधर्व के साथ पंद्रह वर्ष पर्यंत युद्ध करके उसको मार डाला था। वाली के रहते वानरों को किसी का भय बिलकुल न था।

तारा अपने पति की याद करके रो पड़ी। नील ने वाली की छाती से बाण निकाला। तारा के आदेश पर अंगद ने वाली के चरण छूकर प्रणाम किया। तारा के दुख को देख सुग्रीव इसलिए दुखी हुआ कि उसीने वाली का वध कराया है। वह अपनी आँखों में आँसू भरकर रामचन्द्रजी के पास पहुँचा।

सुग्रीव ने राजचन्द्रजी के निकट जाकर कहा–"हे रामचन्द्रजी! आप ने अपने वचन का पालन करके वाली का वध किया। मुझे राज्य दिलाया। मगर तारा तथा वानरों के इस प्रकार रोते रहने पर मेरे लिए यह राज्य ही किसलिए? वाली ने पहले मुझे जैसे सताया, उससे खिन्न हो मैंने वाली की मृत्यु की कामना की। लेकिन वाली के मरने पर मुझे पश्चात्ताप जला रहा है। मुझे लगता है कि मैं अपना शेष जीवन ऋष्यमूक पर्वत पर ही बिताऊँ! अब मुझे स्वर्ग भी नहीं चाहिए। वाली मुझको प्राणों के साथ न छोड़ेगा। मैंने वाली के प्राण लिये है। मुझ से बढ़कर कोई दूसरा पापी न होगा। इस वक़्त मैं युवराजा बनने के लिए भी योग्य नहीं हूँ। ऐसी हालत में मैं राजा कैसे

बन सकता हूँ? मैं भी वाली के साथ जल मरूँगा। वानर आप का कार्य संपन्न करेंगे। वे ही सीताजी की खोज करेंगे।"

तारा ने रामचन्द्रजी से मिलकर कहा–"महात्मा, आप ने जिस बाण से वाली का वध किया, उसी से मेरा भी वध करके वाली के पास मुझको भेज दीजिए। मैं यदि वाली के साथ न रहूँ तो उन्हें कोई सुख न होगा। आप सीताजी के वियोग में जैसे दुख भोग रहे हैं, वैसे ही स्वर्ग में वाली मेरे वास्ते दुखी होंगे। मेरा वध करने पर आप का वाली के वध करने का दोष जाता रहेगा।"

रामचन्द्रजी ने तारा को सांत्वना देते हुए कहा–"तुम वीर की पत्नी हो! इसलिए तुम्हें यह दुख शोभा नहीं देता। वाली के रहते तुमने जो सुख भोखा, वही सुख फिर तुम भोगोगी। तुम्हारा पुत्र अंगद युवराजा बनेगा।"

इसके बाद रामचन्द्रजी ने वानरों से कहा–"तुम लोग जितना भी रोओगे, उसके द्वारा मृत व्यक्ति का कोई हित न होगा। इसलिए ऐसे कार्य कीजिए जिस से वाली को ऊर्ध्वलोकों की प्राप्ति हो।"

इस पर लक्ष्मण ने दुख में डूबे सुग्रीव को समझाया–"हे सुग्रीव! वाली का दहन-संस्कार करना है। वानरों के द्वारा तुम चन्दन की लकड़ियाँ मंगवा दो। अंगद को समझाकर उसको इस बात के लिए तैयार करो जिस से वह अपने पिता के

फूल भर दिये। वानरों को आदेश दिया कि जिस मार्ग से वाली का शव ले जाया जाएगा, उस मार्ग पर फूलों की वर्षा करे। शव के पीछे अंगद के साथ वाली के रिश्तेदार तार इत्यादि पुरुष तथा नारियाँ भी चल पड़ीं। एक छोटी नदी के निकट वालू में चिता बनाई गई। तब वाली का दाह-संस्कार करके जल-तर्पण किया गया। रामचन्द्रजी ने निकट रहकर सारा कर्मकांड संपन्न कराया।

सुग्रीव नहाकर भीगे वस्त्रों के साथ श्री रामचन्द्र तथा लक्ष्मण के निकट आया। सारे वानर भी सुग्रीव के पीछे खड़े हो गये। उस वक्त हनुमान ने रामचन्द्रजी से कहा—"महात्मा! आप की कृपा से सुग्रीव को राज्य-प्राप्ति हुई। आदेश हो तो अभी किष्किधा में जाकर सुग्रीव को अनेक कार्य संभालने हैं। वह शास्त्र विधि से राज्याभिषिक्त हो उचित रूप में आप का सम्मान करेंगे। इसलिए आप किष्किधा में आकर अपने हाथों से सुग्रीव का राज्याभिषेक कीजिए और वानरों को प्रसन्न कीजिए।"

इस पर रामचन्द्रजी ने कहा—"हे हनुमान! मुझे अपने पिता के आदेशानुसार चौदह वर्ष वनवास करना है, इसलिए मुझे गाँवों तथा शहरों में भी प्रवेश नहीं करना चाहिए। तुम्हीं लोग सुग्रीव को ले जाकर

शव के सिर के नीचे आग लगा दे। आज से तुम को किष्किधा पर शासन करना है। ऐसे व्यक्ति को रोते बैठने से काम न चलेगा। अंगद के द्वारा फूल, वस्त्र, घी, तेल, सुगंधित द्रव्य इत्यादि मंगवा लो। पालकी भी मंगवा दो। वाली के शव के ढोनेवाले वानरों को भी तैयार रखो।"

लक्ष्मण के मुँह से ये शब्द सुनते ही तार नाम के व्यक्ति पालकी लाने किष्किधा में गया और शीघ्र ही पालकी के साथ लौट आया। सुग्रीव तथा अंगद ने मिलकर वाली के शरीर को पालकी पर लिटाया। इसके बाद सुग्रीव ने वाली के शरीर पर

वानरों ने उसका अनुसरण किया। उसने अपने पास आये हुए सभी वानरों का कुशल-क्षेम पूछा, तब तारा को सांत्वना देने के लिए वाली के अंत:पुर में गया"।

वाली के अंत:पुर से लौटते ही वानरों ने सुग्रीव का राज्याभिषेक करने के वास्ते स्वर्ण खचित श्वेत छत्र, दो चँवर, समस्त प्रकार के रत्न, सभी प्रकार के बीज, औषधियां, फूल, चंदन, अक्षत, शहद, घी, दही इत्यादि सारी चीजें तैयार रखीं। जंगली सुअर के चमड़े से सिये हुए जूते भी सुग्रीव के वास्ते तैयार रखे गये।

इसके उपरांत ब्राह्मणों ने अग्नि प्रज्वलित कर पूजा की, वैदिक नियमों के अनुसार सुग्रीव का राज्याभिषेक किया। तब गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गंधमादन, मैंद, द्विविद, हनुमान, जांबवान, तथा नल ने सुवर्ण कलशों तथा बैल के सींगों से सुग्रीव का अभिषेक किया।

फिर रामचन्द्रजी के कहे अनुसार सुग्रीव ने अंगद का युवराजा के रूप में अभिषेक किया। इस पर वानरों ने सुग्रीव की प्रशंसा की। तब सभी वानरों ने पर्व मनाया।

अभिषेक का कार्यक्रम समाप्त होते ही सुग्रीव रामचन्द्रजी के पास गया। सारा समाचार उन्हें सुनाकर लौट आया और

वैभवपूर्वक उसका राज्याभिषेक करो। इसी प्रकार अंगद का युवराजा के रूप में अभिषेक करो। अभी श्रावण का महीना शुरू हो गया है। चार महीनों तक वर्षा ऋतु है। यह युद्ध के लिए अनुकूल समय नहीं है। तुम सब किष्किधा में चले जाओ। मैं तथा लक्ष्मण इस पर्वत पर रहेंगे। यहाँ की गुफा अत्यंत विशाल तथा निवास योग्य है। निकट ही जल और कमल भी हैं। कार्तिक के शुरू होने पर रावण को युद्ध में मारने का प्रयत्न करेंगे।"

इस प्रकार रामचन्द्रजी का आदेश पाकर सुग्रीव ने किष्किधा में प्रवेश किया। सभी

अपनी पत्नी रुमा के साथ वह सुखपूर्वक अपने दिन बिताने लगा।

रामचन्द्र तथा लक्ष्मण ने वर्षाकाल बिताने के लिए जिस गुफा को चुन लिया था, वह प्रस्रवण पर्वत पर थी। वह एक सुंदर पर्वत था। गुफा के समीप में ही कमलों से भरा सरोवर था। गुफा का द्वार नैऋत दिशा में था, इसलिए वर्षा की बौछार भीतर प्रवेश नहीं कर पाती थी। पूर्वी दिशा से ठण्डी हवा भी गुफा के भीतर घुस न पाती थी। गुफा के आगे एक सुंदर समतल प्रदेश था। निकट ही एक सुंदर नदी भी बह रही थी। किष्किंधा भी वहाँ से निकट था। अत: किष्किंधा में होनेवाला कोलाहल, वाद्यों की ध्वनियाँ भी भी गुफा तक स्पष्ट सुनाई देती थीं।

ऐसे सुंदर प्रदेश में निवास करते रामचन्द्रजी एक ओर सीताजी के विरह में दुखी थे तो दूसरी ओर रावण का वध करने में सुग्रीव की सहायता की आशा लिये शरत्काल की प्रतीक्षा करने लगे। इस कारण रामचन्द्रजी ने बड़ी कठिनाई से शरत्काल का समय बिताया।

आखिर वर्षा कम हो गई। मगर हनुमान को लगा कि सुग्रीव रामचन्द्रजी के कार्य को बिलकुल भूल सा गया है। उसने अपने राज्य का भार मंत्रियों पर छोड़ दिया और इधर अपना सारा समय सुख-भोगों में बिताया। उसने अपनी पत्नी रुमा के साथ अपने भाई की पत्नी तारा को भी अपनी पत्नी बना ली।

इस बात को भाँपने पर हनुमान सुग्रीव के पास गया और बोला–"आप को राज्य और सुख-भोग तो प्राप्त हुए हैं, साथ ही मित्रों के प्रति अपने कर्तव्य का भी पालन तो कीजिए। जो व्यक्ति अपने निजी काम तक त्याग कर मित्रों के कार्य संपन्न करता है, उसका नाश कभी नहीं होता। अब हमें रामचन्द्रजी के वास्ते सीताजी की खोज करनी है। यह काम अब तक शुरू होना चाहिए था। रामचन्द्रजी अच्छे

स्वभाव के हैं, इसलिए उन्होंने सह लिया। अब आप सीताजी का अन्वेषण करने के लिए वानरों को भेज दीजिए।"

ये बातें सुनने पर सुग्रीव सजग हो उठा। उसने नील को बुलाकर सभी दिशाओं स्थित वानर सेनाओं को बुला भेजने का आदेश दिया। यह भी घोषणा की कि जो वानर पंद्रह दिनों के भीतर नहीं पहुँचेंगे, उन्हें मृत्यु दण्ड दिया जाएगा।

इस बीच वर्षाकाल के बीतने पर सुग्रीव को न लौटते देख रामचन्द्रजी दुखी हुए। उन्होंने लक्ष्मण से कहा–"भाई, सुग्रीव ने वचन दिया था कि शरत्काल के प्रारंभ होते ही सीताजी का अन्वेषण करायेगा। अब अपने कार्य की पूर्ति देख वह हमारे कार्य की उपेक्षा कर रहा है। लगता है कि वह मेरे बाण की चोट खाने की इच्छा रखता है। तुम जाकर उससे कह दो कि मैं उससे नाराज़ हूँ। यह भी कहो कि वाली को जिस पथ पर भेजा, उसी पथ पर उसको भी भेज दूंगा। मैंने अकेले वाली का ही वध किया है, अब सुग्रीव अपने वचन से विमुख हो जाएगा तो उसके साथ, उसके रिश्तेदारों का भी वध करूँगा। ये सारी बातें उसको अच्छे ढंग से समझा दो।"

इस पर लक्ष्मण को भी सुग्रीव पर क्रोध आया।

"सुग्रीव यह बात बिलकुल भूल गया है कि उसको राज्य कैसे प्राप्त हो गया है। उसका राज्य अब टिकनेवाला नहीं है। मैं अभी जाकर सुग्रीव का वध करूँगा और अंगद की सहायता लेकर सीताजी का अन्वेषण कराऊंगा।" इन शब्दों के साथ लक्ष्मण क्रोध में आकर चलने को हुआ, तब रामचन्द्रजी ने उसको रोककर समझाया–"लक्ष्मण! ऐसा मत करो। हमारे और सुग्रीव के बीच जो मैत्री है, उसको मत भूलो। सुग्रीव के साथ मैत्री पूर्वक ही बात करो। उसने विलंब किया है, लेकिन हमारे साथ अन्याय नहीं किया है।"

अर्थिना मुपपन्नानाम्
पूर्वम् चाप्युपकारिणाम्,
आशाम् संश्रित्य यो हन्ति
स लोके पुरुषाधमः ।।   ।। १ ।।

[इसके पूर्व अपना उपकार करनेवाले तथा योग्य व्यक्ति जब सहायता माँगते हैं, तब वचन देकर दगा देनेवाला व्यक्ति सारे संसार में अधम होता है ।]

शुभम् वा, यदि वा पापम्,
यो हि वाक्य मुदीरितम्,
सत्येन प्रतिगृह्णाति
स वीरः पुरुषोत्तमः ।।   ।। २ ।।

[चाहे अच्छा हो या बुरा, वचन देने पर उसका पालन करनेवाला व्यक्ति वीर तथा पुरुषोत्तम होता है ।]

कृतार्था ह्यकृतार्थानाम्
मित्राणाम् न भवन्ति ये,
ता न्मृता नपि क्रव्यादाः
कृतघ्ना न्नोपभुञ्जते ।।   ।। ३ ।।

[उपकार करनेवाले मित्रों के प्रति ज़रूरत के वक़्त प्रत्युपकार न करनेवालों के मरने पर कौए तथा गीध भी उन्हें नहीं खाते । याने उनसे नफ़रत करते हैं ।]

प्रत्युपकार

Photo by Anant Desai

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

किसके घर का दीप जला

प्रेषक :
राजीवकुमार पंडित

Photo by Devidas Kasbekar

C/o विमल टेलर्स,
गल्ला बाजार, भोपाल

मुझको मन का मीत मिला

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २०)

★

★ परिचयोक्तियाँ अप्रैल १० तक प्राप्त होनी चाहिए। सिर्फ़ कार्ड पर ही लिख भेजें।

★ परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबंधित हों, पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जून के अंक में प्रकाशित की जायेंगी!

चन्दामामा

इस अंक की कथा-कहानियाँ-हास्य-व्यंग्य

मित्र-भेद	... २	पाप और पुण्य	... ३५
विचित्र जुड़वाँ	... ५	सच्चा संतोष	... ४१
कर्तव्य	... १३	लालच	... ४३
कहानियों का लाभ	... २१	वीर हनुमान	... ४५
जुड़वीं राजकुमारियाँ	... २५	अमर वाणी	... ५३
लोभ का फल	... ३०	फोटो प्रतियोगिता	... ५६

दूसरा आवरण पृष्ठ:
स्नान के समय

तीसरा आवरण पृष्ठ:
स्नान के उपरांत

Printed by B. V. REDDI at The Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for Chandamama Publications.

Photo by: **K. K. RAO**

HAD A BATH

CHANDAMAMA (Hindi) APRIL 1975 Regd. No. M. 5452

मित्र-भेद